नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 3 अंक 9
अक्टूबर 2001 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर आत्मघाती आतंकवादी हमलों के बाद

आतंकवाद कुचलने के नाम पर पूरी दुनिया की जनता के खिलाफ लुटेरे हुक्मरानों की जंगी मुहिम

(सम्पादक)

पिछले ग्यारह सितम्बर को न्यूयार्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और वाशिंगटन स्थित पेंटागन मुख्यालय पर आत्मघाती आतंकवादी हमलों से हुए महाविनाश में दसियों हज़ार बेगुनाह लोगों का मारा जाना एक दुखद मानवीय त्रासदी है। लेकिन इस भीषण त्रासदी के बाद भी अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश की अगुवाई में समूचे पश्चिमी साम्राज्यवादी लुटेरों और तीसरी दुनिया के उनके लग्गुओं-भग्गुओं की समूची जमात कोई सबक हासिल करती नहीं दीख रही हैं। इतिहास के रास्ते में रुकावट बनकर खड़ी जमात भला इतिहास या वर्तमान को त्रासदियों से कोई सबक ले भी कैसे सकती है? पूरी दुनिया से आतंकवाद को खत्म करने की आड़ में इस जमात ने अब पूरी दुनिया की जनता के खिलाफ एक भीषण जंगी मुहिम छेड़ दी है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की अगुवाई में दुनिया भर के लुटेरे शासक वर्गों को इस मुहिम के तहत जनता के जनतांत्रिक अधिकारों पर हल्ला बोल देने का एक सुनहरा मौका हाथ लग गया है। आतंकवाद के खिलाफ 'लम्बी और अभूतपूर्व लड़ाई', 'अपरिमित न्याय के अभियान', 'आज़ादी की सुरक्षा के लिए अभियान' आदि की आड़ में साम्राज्यवादी शक्तियां 'नयी विश्व व्यवस्था' पर अपनी पकड़ को मजबूत बनाने और उनके लग्गू-भग्गू तीसरी दुनिया के शासक हरसम्भव सौदेबाजियों के जरिये लूट के माल में अपना हिस्सा सुरक्षित रखने के लिये तरह-तरह की शातिर चालों व कूटनीतिक दांव-घातों में मशगूल हैं।

अमेरिकी आतंकवाद का आतंकवादी प्रतिकार!

दुनिया से आतंकवाद के खात्मे के लिए अमेरिकी शासक वर्ग चाहे जितना चिंघाड रहे हों. सच बात तो यह है कि उन्हें न्यूयार्क वाशिंगटन की तबाही और दसियों हज़ार लोगों के मारे जाने की ज़रा भी फिक्र नहीं है। वे जानते हैं कि डब्ल्यू.टी.सी. की जुड़वा मीनारों से भी ऊंची मीनारें तो पूरी दुनिया को लूटकर फिर खड़ी हो जायेंगी और यूं भी हज़ारों हज़ार ज़िन्दगियों का सौदा तो पूंजी के सौदागर रोज़ ही करते रहते हैं। क्या इस सच्चाई को किसी भी प्रकार के झूठ के पर्दों से ढंका जा सकता है कि विश्व स्तर पर आतंकवाद, और खासकर धर्मनिरपेक्षता विरोधी एवं जनवाद-निषेधी धार्मिक कट्टरपन्थ को पैदा करने और मजबूत बनाने की जिम्मेदारी पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की, और उनमें भी सर्वोपरि तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका के शासकों की

(पेज 6 पर जारी)

यदि जनक्रान्तियां नहीं होंगी तो आतंकवादी कार्रवाइयां होंगी

आत्मघाती आतंकवादी दस्ते महज कुछ लोगों के उन्माद, विक्षिप्ति या शौक की वजह से नहीं पैदा हुए हैं। पूरी दुनिया में सत्ता, पूंजी और हथियारों के दम पर सत्ताधारी किसी कौम को, या किसी देश के भीतर वहां की जनता को लगातार कोने में दबोचते चले जायेंगे और अनुकूल परिस्थिति एवं तैयारी के अभाव में यदि जनक्रान्तियां नहीं होंगी तो आतंकवादी कार्रवाइयां तो अवश्य होंगी।

आमतौर पर आतंकवाद और आज की दुनिया में मौजूद आतंकवाद के बुनियादी कारणों को समझना बेहद जरूरी है। पहली बात, कभी-कभी इतिहास और समाज की वैज्ञानिक समझ के अभाव में, व्यापक जनता को जागृत व संगठित किये बिना, मुट्ठी भर बहादुर लोग अपने साहसिक बहादुराना कारनामों से अन्याय का प्रतिरोध करते हैं और यह अपेक्षा करते हैं कि उनकी कुर्बानियों की बदौलत लोग उठ खड़े होंगे। यह सोच आतंकवाद के एक या दूसरे रूप की ओर ले जाती है।

दूसरी बात, कभी-कभी आतंकवाद असह्य दमन- उत्पीड़न या आक्रमण की महज एक अन्धी प्रतिक्रिया होती है, जो अक्सर किसी न किसी प्रकार के मजहबी या पुनरुत्थानवादी अन्धआस्था से बल पाती है और मसीहा तथा उनके अनुयाइयों की शक्ल में अपने को देखती है। इस आत्मसम्मोहक मतिभ्रम के पीछे एक गहरी निराशा काम करती है। प्राय: जनक्रान्तियां जब पराजित होती हैं, जब गतिरोध और उलटाव के दौर आते हैं तो जनता के बीच व्याप्त गहरी निराशा की ज़मीन से, मध्य वर्ग के बीच से ऐसी ताकतें पैदा होती हैं। इतिहास के रंगमंच पर जब जनक्रान्तियों के वास्तविक नायक नहीं होते, तो उन लोगों को भी उत्पीड़ित जनता अपना नायक मान लेती है, जो आत्मघाती हदों तक बहादुराना कारनामों द्वारा अन्यायी सत्ता को चुनौती देते हैं। यह साम्राज्यवादियों की जघन्य करतूतें हैं और विश्व स्तर पर आज जनता में व्याप्त निराशा का तात्कालिक माहौल है कि ओसामा बिन लादेन में भी जनता नायक की तलाश कर रही है।

इसमें दो राय नहीं कि न्यूयार्क और वाशिंगटन पर आत्मघाती हमले निराशा और बदले की कार्रवाई से ही प्रेरित रहे है। लेकिन यह और ऐसी तमाम कार्रवाइयां अमेरिकी प्रभुत्ववाद और पूरे साम्राज्यवादी तंत्र को नष्ट नहीं कर सकतीं। उसका एकमात्र रास्ता तो जनक्रान्तियों का रास्ता ही है, जो युगों-युगों का परीक्षित और सत्यापित रास्ता है।

छपते-छपते

प्रेस की कुछ तकनीकी गड़बड़ियों के कारण 'बिगुल' का यह अंक देर से छप रहा है। इस बीच पिछले 7 अक्टूबर को अमेरिका ने अफगानिस्तान पर हमला शुरू कर दिया हैं। काबुल, कन्धार, जलालाबाद, हेरात आदि शहरों में लड़ाकू विमानों से बमों और मिसाइलों की बारिश के जरिए 'अफगानिस्तान के आकाश पर कब्ज़ा' कर लेने के दावों के बीच अब ज़मीनी हमले की सरगर्मियां भी शुरू हो गई हैं। अब तक के हवाई हमलों में कितने बेगुनाह अफगानी नागरिक मारे गए हैं इसका ठीक-ठाक हिसाब तो अभी नहीं मिल सका है लेकिन इतना निश्चित है कि यह संख्या सैकड़ों में होगी।

।। सितम्बर की आतंकी कार्रवाई के बदले में शुरू हुई अमेरिका की यह नयी महाआंतकी कार्रवाई लम्बे समय तक चलेगी, यह अब साफ हो चुका है। इन हमलों से अमेरिका को ओसामा बिन लादेन 'जिन्दा या मुर्दा' मिलेगा या नहीं, या आहत अमेरिका साम्राज्यवादी गुरूर पर कितना मलहम लग पाएगा, यह तो वक्त बताएगा, लेकिन इतना तय है कि आतंकवाद के खात्मे के बहाने दक्षिण एशिया में पांव जमाने की अमेरिकी रणनीति का गहरा खामियाजा उसे आने वाले दिनों में भुगतना है। कहने की जरूरत नहीं कि पहले से ही दलदल में धंसा हाथी अब और गहराई में धंसता चला जा रहा है।

• सम्पादक

भीतर के पन्नों पर

1. दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका के काले कारनामे -पृ.3

2. जब युद्धों से तबाही का मंजर रचा जाता है - पृ. 3

3. खून देकर मजदूरों को मिले संघर्ष के कीमती सबक - पृ. 4

4. डाक कर्मचारियों एवं आम जनता के अधिकारों पर नग्न हमला- पृ. 5· रुद्रपुर में बंगाली समुदाय का प्रदर्शन - पृ. 8

6. कताई मिलों की बंदी से हज़ारों परिवार भुखमरी के कगार पर-पृ. 9

आतंकवाद के बहाने भारतीय शासक वर्ग भी जनता के दमन का शिकंजा कस रहे हैं

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर पिछले ।। सितम्बर को हुए आतंकवादी हमले के बाद भारतीय शासक वर्गों को भी जनता के जनतांत्रिक अधिकारों को कुचलने का एक कारगर बहाना मिल गया है। देश का शासक वर्ग एक ओर तो अपने आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक हितों के मद्देनज़र अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा दुनिया से आतंकवाद खत्म करने के नाम पर शुरू किये गये नये आतंककारी अभियान के प्रति बढ़-चढ़कर एकजुटता प्रदर्शित कर रहा है, वहीं दूसरी ओर इस अनुकूल माहौल का लाभ उठाकर जनता के जनवादी अधिकारों पर शिकंजा कसते जाने की कार्रवाइयों में भी जुट गया है।

पिछले 28 सितम्बर को गृह मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ एक बैठक में केन्द्रीय गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने यह सूचना दी कि सरकार अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में एक **आतंकवाद विरोधी अध्यादेश** जारी

करने पर विचार कर रही है। इस सम्बन्ध में आगामी पांच अक्टूबर को गृहसचिव और सभी प्रान्तों के पुलिस महानिदेशकों के साथ एक विशेष बैठक बुलाने का निर्णय लिया गया है।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि इस बैठक में पुलिस के उच्चाधिकारी सरकार की मर्जी पर अपनी सहमति की मुहर लगा देंगे। वे तो पहले से ही अपने 'हाथ खुले करने' की मांग करते रहे हैं। पुलिस महकमे में के.पी.एस. गिल जैसे 'मर्दाने' अफ़सरों की कमी नहीं है जो विभिन्न जनपक्षधर बुद्धिजीवियों-पत्रकारों और लोक अधिकार कार्यकर्ताओं द्वारा पुलिस एवं अर्द्धसैनिक बलों की इस आलोचना पर

(पेज 2 पर जारी)

आपस की बात

क्या विश्व से आतंकवाद खत्म होगा!

गत 11 सितम्बर को अमेरिका के न्यूयार्क व वाशिंगटन शहरों के विश्वप्रसिद्ध भवनों – वर्ल्ड ट्रेड सेंटर (110 मंजिलें जुड़वां दोनों भवन, जो विश्व पूंजीवादी अर्थ-व्यापार के शीर्ष प्रतीक थे) व पेंटागन (अमेरिकी रक्षा विभाग का सर्वोच्च कार्यालय) पर हुए आतंकी हमलों ने हज़ारों बेगुनाहों को मौत के घाट उतार दिया। इस भयानक आतंकवादी कार्रवाई, जिससे अमेरिकी गुरूर के बैलून की हवा निकल गयी, ने एक बार फिर यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि आतंकवाद की जमीन क्या है? क्या दुनिया से आतंकवाद खत्म होगा? इस विषय पर आज सोचना बेहद ज़रूरी है।

वैश्विक लूटतंत्र का सरगना अमेरिका अपने मुल्क में हुए इस घटना के बाद, आतंकवाद के खात्मे का, जोर-शोर से राग अलापने लगा है। भारत से लेकर पूरी दुनिया की लुटेरी मानवद्रोही सरकारें उसके सुर में सुर मिला रही हैं। सच्चाई यह है कि असली आतंकवादी तो पूंजीवादी मुनाफाखोर और उनकी सरकारें हैं और आज इसका भी सरगना अमेरिका ही है। 'सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली'।

द्वितीय विश्व युद्ध के समापन बेला पर जापान के हिरोशिमा व नागासाकी शहरों को परमाणु विस्फोट से नष्ट करने वाला अमेरिका ही था। अभी पिछले एक-दो दशक में ही देखें। सूडान की एक दवा बनाने वाली कम्पनी को अमेरिका ने ही बमों से नेस्तनाबूद किया था। इसी अमेरिका की मिसाइलों ने फिलिस्तीनियों की तमाम बस्तियां उजाड़ दीं, लेबनान को तबाह और बर्बाद कर दिया, हज़ारों-लाखों लोगों को देखते-देखते मौत के मुंह में धकेल दिया। इराकी तेल भण्डारों पर अपना कब्ज़ा जमाने के लिए अमेरिका ने 1990-91 में पूरे इराक के कोने-कोने में बमबारी की। विगत 10 वर्षों के दौरान अमेरिकी सरपरस्ती में जारी आर्थिक नाकेबन्दी से पन्द्रह लाख से ज़्यादा इराकी मौत के शिकार हो चुके हैं और दवाओं के अभाव में वहां बच्चे कुपोषित हो रहे हैं, असमय ही मौत के मुंह में समाते जा रहे हैं।

अमीरों द्वारा गरीबों को और अमीर देश द्वारा गरीब देशों को मनमाने शर्तों पर लूटने-निचोड़ने और मनमानी शर्तें थोपने का मामला आज पहले से ज़्यादा तीखा हुआ है। हर वह व्यक्ति, समूह या देश जो इसकी अवहेलना करे वह आतंकवादी करार दिया जायेगा। इराक, अफगानिस्तान, फिलीपीन्स, क्यूबा, फिलिस्तीन आदि देश और देश के भीतर तमाम क्रान्तिकारी संगठन तक समय बा समय आतंकवादी घोषित होते रहे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि तमाम किस्म के आतंकवाद को पालने-पोसने व बढ़ावा देने का काम तो पूंजीवादी सरकारें ही करती रही हैं जो अन्त में उन्हीं के लिए भष्मासुर साबित होते हैं।

भारत जैसे देश में तो आतंकवाद की हद ही पार हो चुकी है। चाहे पडरौना में गन्ना किसानों के शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिसिया गोलीबारी हो या खटीमा, मुजफ्फरनगर की बेगुनाह जनता को कुचला जाना हो, क्या यह सरकारी आतंकवाद नहीं है? डाला सीमेण्ट फैक्टी के मज़दूरों का आन्दोलन हो अथवा पन्तनगर या स्वदेशी काटन मिल कानपुर का मज़दूर आन्दोलन हो, यहां के हत्याकाण्ड क्या सरकारी आतंक की नज़ीर नहीं है? कश्मीर से लेकर पूर्वोत्तर भारत तक की आम जनता विद्रोही आतंकवाद व सरकारी आतंकवाद की चक्की में नहीं पिस रही है?

जो भाजपा सरकार आज सबसे ज़्यादा चिल्ल-पों मचा रही है, क्या वह भारत की सबसे बड़ी आतंकवादी पार्टी नहीं है? भाजपा की मां आर.एस.एस. व भाई-बहन विश्व हिन्दू परिषद, बजरंगदल वगैरह तो खुद बड़े आतंकवादी हैं। 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद पूरे देश में जो भयानक दंगों का माहौल बना उसका जिम्मेदार कौन है? ईसाई मिशनरियों को आखिर क्यों आतंक के साये में जीना पड़ रहा है? उत्तर प्रदेश/ उत्तरांचल में चुनावी मौसम आते ही मन्दिर निर्माण की घोषणा से एक तरफ तो वे नये आतंक का माहौल कायम कर रहे हैं, तो दूसरी तरफ दुनिया से आतंकवाद खत्म करने की घोषणा – क्या यह दोगली नीति नहीं है?

सरकारी दमन, भूख से होने वाली मौतें, बढ़ती बेरोजगारी से निराशा, आत्महत्या की घटनाएं, दवा-इलाज के अभाव में कुपोषण व मौतों के लिए जिम्मेदार पूंजीवादी मुनाफाखोर व्यवस्था और उनकी सरकारें ही सबसे बड़ी आतंकवादी नहीं हैं?

आज पूरी दुनिया से आतंकवाद को खत्म करने का एलान पूंजीवादी लुटेरों की कोरी बकवास है। जब तक पूंजी व मुनाफे का आतंक कायम रहेगा – आतंकवाद भी कायम रहेगा।

आतंकवाद खत्म करने का एक ही उपाय है:

खत्म करो पूंजी का राज!
लड़ो बनाओ लोक स्वराज!!

मोहन लाल
किच्छा (ऊधमसिंह नगर)

मज़दूरों के खून-पसीने पर ऐय्याशी करते मालिक

लुधियाना के दशमेश नगर की आठ नंबर गली में 'ए.एस.टूल्स इंडस्ट्री' नाम की एक छोटी सी फैक्ट्री है। यह फैक्ट्री उन तमाम फैक्ट्रियों में से एक है जहां पर मालिक मज़दूर की मज़दूरी तक को डकार जाते हैं। इस फैक्ट्री में मज़दूरों से तीन-तीन माह तक काम लेकर उन्हें बिना तनख्वाह के भगा दिया गया। पहले इस फैक्ट्री में 5 मज़दूर काम करते थे, अब सिर्फ 2 मज़दूर रह गये हैं। मैंने भी कुछ समय इस फैक्ट्री में काम किया है। इस फैक्ट्री में क्रास पाना, प्लग पाना, टैंकी पाना, मैगनेट पुलर आदि यंत्र बनते हैं। यहां पर आये दिन मज़दूर मालिक की धक्काशाही का शिकार बनते हैं। मुझसे भी पन्द्रह दिन काम करवाकर बिना कोई हिसाब किये काम से निकाल दिया गया। लेकिन मैंने चुपचाप घर बैठ जाने के बजाय 'मोल्डर एण्ड स्टील वर्क्स यूनियन' से सम्पर्क किया और यूनियन के माध्यम से कोर्ट में केस कर दिया। हालांकि इन कोर्ट-कचहरियों से इन्साफ की उम्मीद बहुत कम है, लेकिन फिर भी मालिकों की तानाशाही के खिलाफ हर तरीका आज़माना ज़रूरी है।

सुनील कुमार शर्मा, लुधियाना

मैंने आपका नई समाजवादी क्रांति का उद्‌घोषक 'बिगुल' पढ़ा। बहुत अच्छा लगा। इसी के साथ मैं यह दुआ करता हूं कि आपका पेपर पूरे विश्व के बेरोजगार और छात्र-नौजवानों के बीच फैले और जनचेतना का समाजवादीकरण हो।

इसी शुभकामनाओं के साथ...

– फिरोज खान
कोटा (राजस्थान)

वार्षिक सदस्यों के लिए सूचना

पाठकों से निवेदन है कि सदस्यता राशि भेजते समय मनीआर्डर फार्म पर अपना नाम व पता लिखना न भूलें। अक्सर हमें ऐसे मनीआर्डर मिल रहे हैं जिनमें राशि भेजने वाले का नाम व पता नहीं होता। वे सदस्य जिन्हें राशि भेजे जाने के बाद भी बिगुल प्राप्त नहीं हो रहा है वे अपना नाम व पता लिखकर बिगुल कार्यालय को भेजें।

जनता के जनवादी अधिकारों पर शिकंजा कसते जाने की कार्रवाई –

(पेज 1 से आगे)

बिफरते रहते हैं कि आतंकवाद के दमन के नाम पर मानवाधिकारों का भीषण उल्लंघन किया जाता है। ऐसे में यह बैठक महज एक खानापूरी ही है।

सरकार इतनी उतावली में है कि वह जल्दी ही शुरू होने जा रहे संसद के शीतकालीन सत्र का इन्तज़ार भी नहीं करना चाहती। हालांकि इस सत्र में आतंकवाद निरोधक अधिनियम पेश करने की पहले से ही तैयारी थी। विधि आयोग 'टाडा' के स्थान पर आतंकवाद निरोधक अधिनियम–2000 पिछले साल ही तैयार कर चुका था जब राम जेठमलानी कानून मंत्री थे। लेकिन सरकार अब सिर्फ इस रिपोर्ट के भरोसे ही नहीं रहेगी। वह अभी पाकिस्तान में लागू किये गये आतंकवाद निरोधक कानून के साथ-साथ अमेरिका और ब्रिटेन के कानूनों का भी अध्ययन कर रही है, जिससे अध्यादेश के ज़रिये आतंकवाद और 'राष्ट्रविरोधी' गतिविधियों की परिभाषा को व्यापक बनाकर जनवादी अधिकारों पर कारगर हमला बोला जा सके।

केन्द्र की सत्तारूढ़ राजग सरकार को प्रमुख घटक भारतीय जनता पार्टी बड़ी ही कुशलता के साथ 'आतंकवाद विरोधी मुहिम' को साम्प्रदायिक रंग देकर अपनी चुनावी राजनीति का खेल भी साथ ही साथ खेल रही है। 'सिमी' पर प्रतिबन्ध को इसी कड़ी में देखा जा सकता है। जिन आधारों पर 'सिमी' पर प्रतिबन्ध लगाया गया है उनके बारे में देश के कई प्रमुख कानूनविदों का ही कहना है कि वे प्रतिबन्ध लगाने के पर्याप्त आधार नहीं हैं। यूं भी जिन आधारों पर 'सिमी' पर प्रतिबन्ध लगाया गया है उनके आधार पर बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद जैसे हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों पर भी प्रतिबन्ध न लगाया जाना केन्द्र सरकार की मंशा को साफ उजागर करता है।

आतंकवाद कुचलने के नाम पर सत्ताधारियों द्वारा की जा रही ये कार्यवाइयां सभी जनवाद पसन्द लोगों, क्रान्तिकारी जनान्दोलनों से जुड़े लोगों और आम तौर पर मेहनतकश अवाम के लिए खतरे की घंटी है। सरकार की मंशा तो यह है कि उसकी नीतियों के जनतांत्रिक विरोध राष्ट्रविरोधी और आतंकवादी कार्रवाई घोषित कर दी जाये। बहरहाल, यह तो सरकार की मंशा की बात हुई। आततायी सरकारों का वश चले तो वे आदमी के सपनों और आकांक्षाओं पर भी पहरे बिठा दें। लेकिन, राष्ट्र के स्वयंभू पहरेदार बने बैठे लोग शायद यह भूल जाते हैं कि आज़ादी और सच्चाई की आवाज़ को खून की नदियों में भी नहीं डुबाया जा सकता है। सत्ता के बढ़ते दमन के साथ प्रतिरोध की आवाज़ें भी ऊंची उठती जायेंगी, हमेशा ऐसा ही हुआ है, आज भी यही होगा।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनवाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ** ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर ♦ जनचेतना, डी 68, निरालानगर **लखनऊ** ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8·30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ♦ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, **दिल्ली** ♦ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, **दिल्ली** ♦ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ♦ पंकज कुमार, 256, मॉडल टाउन, सोनीपत, हरियाणा ♦ डी. के. सचान, एस. एच.- 272, शास्त्रीनगर **गाजियाबाद** ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, **बोकारो** ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. -तेघड़ा, **बेगूसराय** ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ♦ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आज़ाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ♦ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,जबलपुर ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा ♦ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ♦ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ♦ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया *नेपाल* ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ♦ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ♦ विशाल पुस्तक [illegible]सल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल ♦ लक्ष्मी नारायण मिश्र, 853, हिरनमगरी, सेक्टर 4, पूजानगर, उदयपुर (राज.)

दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका के काले कारनामे

● सुरेन्द्र कुमार

आतंकवाद के खिलाफ "अंतिम युद्ध" छेड़ने और "इंसाफ करने के दावे कर रहा अमेरिका खुद विश्व इतिहास का सबसे बड़ा आतंकवादी है जिसके जघन्य अपराधों की फेहरिस्त इतनी लम्बी है कि उसे यहां गिनाना असम्भव है। आज जिस ओसामा बिन लादेन को अमेरिका और उसके तलुवे चाटने वाले भारतीय मीडिया ने वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हमलों का दोषी करार देकर उसके एलज में हज़ारों बेगुनाहों को सजा देने की कार्रवाई शुरू कर दी है, उसे पैदा किसने किया? दुनिया की सबसे संगठित आतंकवादी संस्था सीआईए ने ही तो उसे पाला-पोसा और अफगानिस्तान में कम्युनिज्म के हौवे से लड़ने के नाम पर वह सब कुछ दिया जिसने अन्ततः ओसामा को भस्मासुर बना डाला।

11 सितम्बर को जब आतंकवाद के पालनहारों और मौत के सौदागरों को 1812 के बाद से पहली बार अपनी ही धरती पर अपनी सैन्य शक्ति और वित्तीय बाहुबल के प्रतीकों को ध्वस्त होते देखना पड़ा तो सामने मुंह बाए खड़ी भयावह आर्थिक मंदी के बीच अपने सारे पिछले पापों पर पर्दा डालने के लिये पूरे अमरीकी प्रचारतंत्र की तोपों का मुंह ओसामा की ओर मोड़ दिया गया। पूरा प्रयास यह रहा कि इस सारे कर्णभेदी कोलाहल के बीच नवउपनिवेशवाद के बीते दिनों के घिनौने इतिहास और आने वाले कल की महाशक्तिवादी रणनीति की ओर से सबका ध्यान हटा दिया जाये। इस बीच मीडिया हज़ारों लोगों की लोमहर्षक मृत्यु तक को बेचने में लगा रहा।

सारी दुनिया को अपने बूटों के तले रखने वाले अमरीका के घर में घुसकर आतंकवादियों ने उसकी नाक तोड़ दी, इसलिये अमरीका का बौराये जानवर की तरह शोर मचाना स्वाभाविक है। और जब बॉस की नाक लाल हो गयी हो तो जाहिर है कि भारतीय शासक वर्ग जैसे उसके लग्गू-भग्गू भी उछलकूद मचायेंगे ही और जमीन पर लाठियां पटकेंगे ही। और उनका भौंपू-पुरा का पूरा मीडिया गला फाड़-फाड़कर बुश और पावेल और रम्सफेल्ड और ब्लेयर की आवाज में चिल्लायेगा ही।

लेकिन आइये हम जरा सिर्फ पिछले 50 बरस में अमरीकी आतंकवाद की चंद कारगुजारियों को याद कर लें।

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमले के ठीक 28 साल पहले 11 सितम्बर के ही दिन चिली में सीआईए की सक्रिय मदद से साल्वादोर अलेन्दे की लोकप्रिय सरकार का तख़्ता पलटने के बाद जनरल पिनोशे द्वारा कराये कत्लेआम में 50,000 हजार लोग मारे गये थे। 1967 में इण्डोनेशिया में अमरीका की शह पर 50 लाख लोग मौत के घाट उतार दिये गये क्योंकि वे कम्युनिस्ट थे या उनके साथ सहानुभूति रखते थे। पिछले 10 वर्षों में इराक में अमरीकी प्रतिबन्धों के कारण 5 लाख छोटे बच्चे मर चुके हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही अमरीका किसी न किसी देश पर हमले और बमबारी लगातार करता रहा है और पश्चिम एशिया के देशों में तो 1983 के बाद से उसकी बमबारी का सिलसिला रुका ही नहीं है। इससे पहले कोरिया और वियतनाम पर थोपे गये युद्धों में 40 लाख लोग मारे गये थे। युद्ध की घोषणा किये बिना अमरीकी युद्धपोत और विमान लगातार लेबनान, लीबिया, इराक, ईरान, सूडान और

"दुनिया के सामने हमने अपनी तस्वीर एक ऐसे गुण्डे के रूप में पेश की है जो एक बटन दबाता है और हजारों लोग मौत की नींद सो जाते हैं। हम एक मिसाइल के खर्च के अलावा कोई कीमत नहीं चुकाते...आने वाले वर्षों में बाकी दुनिया के साथ हमारे सम्बन्धों में यह तस्वीर हमारा पीछा करती रहेगी।"

– लारेंस ईगलबर्गर, भूतपूर्व अमरीकी विदेश मंत्री

अफगानिस्तान पर हमले करते रहे हैं। इन हमलों में कितने निर्दोष नागरिक मारे गये इसकी न तो अमरीका को जानकारी है और न ही फिक्र। निकारागुआ, अल सल्वाडोर, क्यूबा, ग्रेनाडा, ग्वाटेमाला, पनामा जैसे देशों में अमरीका ने न जाने कितने जनसंहार कराये हैं। आज भी कोलम्बिया में युद्ध जैसी स्थिति बनी हुई है जहां अमरीका गांव-गांव तक में बमबारी करने के लिये अरबों डालर खर्च कर रहा है। पेरू में जारी जनयुद्ध को कुचलने के लिये अमरीका ने वहां हज़ारों ग्रीन बेरेट्स सैनिक उतारे हैं।

बेशर्म, वहशी हत्यारा

अमेरिका ने दुनिया के न जाने कितने देशों में वहां के लोकप्रिय नेताओं की हत्याएं कराई हैं और उसकी दर्जनों असफल कोशिशों का भांडा फूट चुका है।

अप्रैल 1955 में तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन-लाई ने बांदुंग रवाना होते समय अचानक अपना कार्यक्रम बदल दिया और किसी कारणवश एअर इंडिया के विमान के बजाय दूसरा विमान पकड़ा। एअर इंडिया के विमान में रखा बम नियत समय पर फट गया, अनेक बेकसूर लोग मारे गये पर चाउ एन-लाई बच गये। सीआईए का मिशन विफल रहा, हालांकि बाद में लीपापोती करने के प्रयास में उसने दावा किया कि हांगकांग में उसके एजेंट को पहले ही इस "योजना" पर अमल करने से रोकने के आदेश दे दिये गये थे, इसलिये एअर इंडिया के विमान के विध्वंस में उसका हाथ नहीं था। पर हत्यारों का चेहरा बेनकाब हो चुका था। (देखें, फाइनल, रिपोर्ट, भाग IV पृ. 103 अमेरिका की आधिकारिक जांच समिति के पर्यवेक्षण के अंश) आगे चलें।

क्यूबा में फिदेल कास्त्रो के नेतृत्व में जनक्रान्ति सफल होते ही अमेरिका ने उनकी हत्या का फैसला कर लिया था। सीआईए के तत्कालीन डायरेक्टर एलन डलेस ने एक आदेश पर हस्ताक्षर किये थे जिसमें लिखा था: "फिदेल कास्त्रो को ठिकाने लगाने पर पूरा ध्यान दिया जाये।... यकीन है कि कास्त्रो के दृश्यपटल से ग़ायब हो जाने से क्यूबा की मौजूदा सरकार के पतन की प्रक्रिया बहुत तेज हो जायेगी। ..." (एलेज्ड एसेशिनेशन प्लॉट्स अगेन्स्ट फारेन लीडर्स (विदेशी नेताओं को कत्ल कराने की कथित साजिशें), चर्च कमेटी, अमेरिकी संसद की रिपोर्ट, पृ.11) खुद अमेरिकी पत्रकारों और सीआईए के भूतपूर्व कर्मियों के अनुसार अमेरिका ने कास्त्रो को खत्म करने के लिए दो दर्जन से ज़्यादा कोशिशें की हैं जिनमें माफिया तक का इस्तेमाल किया गया है।

कुछ समय बाद स्वतंत्र कांगों के पहले लोकप्रिय नेता पैट्रिस लुमुम्बा को सीआईए के जारज पुत्र मोबुटु ने वहशीपन के साथ कत्ल करा दिया। इस शर्मनाक काण्ड में पर्दे के पीछे अमरीकी राष्ट्रपति इवाइट आइजनहोवर, सीआईए के कुख्यात डायरेक्टर एलेन डलेस, ओ' डोनेल, रिचर्ड बिसेल, बिल हार्वे आदि शामिल थे।

80 के दशक में लीबिया के नेता मुअम्मर गद्दाफी का तख़्ता पलटने और उनकी हत्या के कई असफल प्रयासों के बाद 14 अप्रैल 1986 को अमरीका के दर्जनों एफ 111 बमवर्षकों ने सोये

(पेज 10 पर जारी)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी बमबारी के शिकार देश

चीन	1945-46	कम्बोडिया	1969-70
कोरिया	1950-53	ग्वाटेमाला	1967-69
चीन	1950-53	ग्रेनाडा	1983
ग्वाटेमाला	1954	लीबिया	1986
इंडोनेशिया	1958	अल सल्वाडोर	1980 का दशक
क्यूबा	1959-60	निकारागुआ	1980 का दशक
ग्वाटेमाला	1960	पनामा	1989
कांगो	1964	इराक	1991-01
पेरू	1965	सूडान	1998
लाओस	1964-73	अफगानिस्तान	1998
वियतनाम	1961-73	युगोस्लाविया	1999

इतिहास बताता है कि युद्ध दो प्रकार के होते हैं – न्यायपूर्ण युद्ध और अन्यायपूर्ण युद्ध। सभी प्रगतिशील युद्ध न्यायपूर्ण होते हैं और ऐसे सभी युद्ध जो प्रगति को रोकते हैं, अन्यायपूर्ण होते हैं। हम कम्युनिस्ट लोग प्रगति को रोकने वाले सभी अन्यायपूर्ण युद्धों का विरोध करते हैं, लेकिन हम लोग प्रगतिशील न्यायपूर्ण युद्धों का विरोध नहीं करते। हम कम्युनिस्ट लोग न केवल न्यायपूर्ण युद्धों का विरोध नहीं करते, बल्कि उनमें सक्रियतापूर्वक भाग भी लेते हैं। जहां तक अन्यायपूर्ण युद्धों का सम्बन्ध है, पहला विश्वयुद्ध ऐसे युद्धों की एक मिसाल है, इसे दोनों पक्षों ने साम्राज्यवादी हितों के लिए चलाया था; इसलिए सारी दुनिया के कम्युनिस्टों ने उसका दृढ़ता से विरोध किया था। इस प्रकार के युद्ध का विरोध करने का तरीका यह है कि उसकी शुरुआत होने के पहले ही हर मुमकिन तरीके से उसे रोकने की कोशिश की जाए, और जहां एक बार उसकी शुरुआत हो गई तो जब भी सम्भव हो, युद्ध का विरोध युद्ध के जरिए किया जाय, अन्यायपूर्ण युद्ध का विरोध न्यायपूर्ण युद्ध के जरिए किया जाए।

माओ त्से-तुङ

जब युद्धों से तबाही का मंजर रचा जाता है तो मौत के सौदागरों की तिजोरियां भरती हैं

11 सितम्बर के बाद आयी उछाल

आम लोगों के लिए लुटेरे युद्धों का अर्थ है – तबाही-बर्बादी, लेकिन मौत के सौदागरों – दुनिया के मुनाफाखोरों के लिए ये युद्ध फटाफट तिजोरियां भरने के सुनहरे मौके लेकर आते हैं। 11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हुए आतंकवादी हमले के बाद "अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद" के खिलाफ शुरू किये गये अमेरिकी "अपरिमित न्याय" के अभियान का एक प्रमुख मकसद जहां यह है कि इसकी आड़ में अमेरिकी साम्राज्यवादी दुनिया पर अपनी "अपरिमित शक्तिमत्ता" को सुदृढ़ कर लेना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर इससे अमेरिका और दुनिया भर के हथियार उद्योग और हथियारों के अन्तरराष्ट्रीय व्यापारियों-बिचौलियों के लिए अकूत मुनाफा पीटने का सुनहरा मौका हाथ लग गया है।

अमेरिकी सत्ताधारी इस मौके का उपयोग अपने नये हथियारों और नयी तकनोलाजी के परीक्षण के लिए भी करेंगे। नये संवेदी उपकरणों और गुफाओं को भेद देने वाले बमों के परीक्षणों की चर्चाएं हो भी रही हैं। अभी अमेरिकी कांग्रेस ने 'आतंकवाद से लड़ने' के लिए चालीस अरब डालर की मंजूरी दी है और उम्मीद है कि वर्ष 2002 के रक्षा बजट में 50 अरब डालर की और बढ़ोत्तरी हो जायेगी। वर्ष 2001 का अमेरिकी रक्षा बजट 296 अरब डालर का है। वैसे एक अनुमान यह भी लगाया जा रहा है कि अगले वर्ष यह बढ़कर 400 अरब डालर तक पहुंच सकता है जो भारत के समूचे सकल घरेलू उत्पाद के 75 प्रतिशत के बराबर होगा।

अमेरिका इस मौके का भरपूर फायदा उठाते हुए अपने विवादास्पद राष्ट्रीय मिसाइल प्रतिरक्षा प्रणाली और 'स्टार वार्स' कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की दिशा में बढ़ेगा। इससे न केवल हथियार उद्योग को भरपूर मुनाफा मिलेगा बल्कि अन्तरिक्ष में उसके सम्पूर्ण आधिपत्य का रास्ता भी साफ होगा।

11 सितम्बर की घटना के बाद जहां अमेरिकी स्टाक मार्केट जब तीन-चार दिनों की बन्दी के बाद दुबारा खुला तो जहां अन्य उद्योगों की शेयर कीमतें धराशायी हो गयी थीं वहीं तोपों, बन्दूकों, युद्धपोतों और मिसाइलें बनाने वाली कम्पनियों की शेयर कीमतें आसमान छूने लगीं। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद जहां 1990 के दशक में अमेरिका के हथियार उद्योगों में गिरावट छा गयी थी, वहीं अब वह फिर उछाल पर है।

शीत युद्ध के दौरान जहां अमेरिका रक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 5 प्रतिशत खर्च करता था वहां 1990 के दशक में यह घटकर 3 प्रतिशत से भी नीचे आ गया था। लेकिन 11 सितम्बर की घटना के बाद अब फिर हथियार उद्योग के दिन फिरने लगे हैं और रक्षा पर सरकारी खर्च भी बेतहाशा बढ़ने की उम्मीद है। 'जनरल डायनेमिक्स कम्पनी' का उदाहरण लीजिए जो टैंक और युद्धपोत बनाती है। पिछले साल इंटरनेट उछाल के चरम पर होने के कारण इसकी शेयर कीमत 40 डालर से भी नीचे आ गयी थी लेकिन 11 सितम्बर के बाद यह उछलकर 90 डालर तक पहुंच गयी। कई प्रकार के लड़ाकू हवाई जहाज बनाने वाली कम्पनी 'नार्थरप ग्रुमैन' की स्थिति इससे भी बेहतर रही। पिछले साल के अन्त में इसके शेयरों की कीमतें 45 डालर थीं जो आज उछलकर 100 डालर से भी ज़्यादा पहुंच गयी हैं। अमेरिका पर आतंकवादियों द्वारा जैविक व रासायनिक हथियारों के हमलों के हौवे के बीच जैव-तकनोलाजी से जुड़े उद्योगों के शेयरों की कीमतें भी उछाल पर हैं।

पुराना इतिहास भी गवाह है

इतिहास पर भी एक नज़र डालने से साफ हो जायेगा कि कैसे लुटेरे युद्धों से मुनाफाखोर मालामाल होते रहे हैं। 1945 में हिरोशिमा-नागासाकी पर बमबारी से विनाश लीला रचकर अमेरिकी लुटेरों ने 'मार्शल योजना' के तहत अरबों डालर का निवेश कर अमेरिका की पूंजी की प्रचुरता के संकट से काफी राहत पायी। बमबारी के बाद मैकार्थी काल में नाभिकीय हथियारों के विकास के लिए 5800 अरब डालर का भारी निवेश हुआ।

खाड़ी युद्ध का ताजा उदाहरण लें। इस भीषण जनसंहारक युद्ध में इराकी जनता को जो तबाही झेलनी पड़ी और आर्थिक नाकेबन्दी के कारण आज भी झेलनी पड़ रही है, इससे बेफिक्र अमेरिकी मौत के सौदागरों की तिजोरियां भरती रहीं। एक आंकड़ा ही काफी है इसकी तस्वीर सामने लाने के लिए। 1987 में हथियारों के वैश्विक निर्यात में अमेरिका का हिस्सा 28 प्रतिशत था जो 1997 में बढ़कर 58 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस खाड़ी युद्ध के सिर्फ दो वर्षों में अमेरिका ने 500 युद्धक विमानों को बेचा, जिनमें एफ-15, एफ-16 और एफ/ए-18 विमान शामिल थे। प्रमुख खरीदार थे खाड़ी के उसके प्रमुख सहयोगी देश –

(पेज 10 पर जारी)

शाही एक्सपोर्ट ग्रुप का मज़दूर आन्दोलन

खून देकर मज़दूरों को मिले संघर्ष के कीमती सबक

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा/ ग्रेटर नोएडा (गौतम बुद्ध नगर)। नेतृत्व के विश्वासघात और संघर्षरत आम मज़दूरों की अनुभवहीनता के कारण शाही ग्रुप की तीनों कम्पनियों के मज़दूर आन्दोलन को फिलहाल पीछे हटना पड़ा है। महज इक्का-दुक्का मांगों के पूरा होने के बावजूद आन्दोलन के दौरान हालात इस तरह पैदा हुए कि फिलहाल तीनों कम्पनियों – नोएडा सेक्टर-11 स्थित **शाही एक्सपोर्ट (ई-10)** और ग्रेटर नोएडा फेज-II स्थित **गारमेक्स** व **ए-5** कम्पनी के मज़दूर काम पर वापस लौट गये हैं। अपनी जायज़ मांगों और कम्पनी मालिकान-मैनेजमेण्ट के जोरो-जुल्म के ख़िलाफ चले इस शानदार संघर्ष में एक मज़दूर साथी को अपनी जान भी गंवानी पड़ी है। भले ही इस संघर्ष की उपलब्धि के तौर पर मज़दूरों को ठोस कुछ खास न हासिल हुआ हो लेकिन अपना खून देकर उन्होंने जो सबक और संघर्ष के अनुभव हासिल किये हैं वे ठोस उपलब्धियों से ज़्यादा कीमती हैं।

मज़दूरों पर कातिलाना हमला

निर्यात के लिए सिले-सिलाये कपड़े बनाने वाली इन कम्पनियों का अकेला मालिक और उसका मैनेजमेंट कितना जालिम है इसका आंखें खोल देने वाला उदाहरण पिछले 21 सितम्बर की वह कातिलाना वारदात है जिसमें एक मज़दूर साथी की जान चली गयी। उस दिन पिछले कई दिनों से जारी संघर्ष के सिलसिले में सुबह-सुबह ग्रेटर नोएडा फेज II स्थित कम्पनी ए-5 के सामने मज़दूर अभी इकट्ठा होना शुरू ही हुए थे कि एक साजिश के तहत दनदनाता हुआ एक 'मिनी ट्रक' अचानक नज़र आया और अन्धाधुन्ध वहां खड़े मज़दूरों को रौंदता-कुचलता हुआ आगे बढ़ गया। इस कातिलाना हमले में 25 मज़दूर बुरी तरह जख्मी हुए जिसमें कई महिलाएं भी थीं। इसी घटना में जख्मी ए-5 के एक नेतृत्वकारी मज़दूर साथी उपेन्द्र की 25 सितम्बर को मृत्यु हो गयी। बताया जाता है कि कम्पनी मैनेजमेंट ने पुलिस से सांठगांठ कर अपने एक भाड़े के ड्राइवर से इस जघन्य करतूत को अन्जाम दिया था।

इस घटना के बाद पहले से ही जारी मज़दूरों का संघर्ष और तेज हो उठा था। तीनों कम्पनियों के मज़दूरों ने एकजुटता दिखाते हुए हमलावर ड्राइवर को गिरफ्तार करने और साजिश में शामिल मैनेजमेंट व पुलिसकर्मियों के ख़िलाफ मुकदमा दायर करने की मांग के साथ स्थानीय सिटी मजिस्ट्रेट के दफ्तर के सामने आमरण अनशन शुरू कर दिया था। लेकिन प्रशासन हरकत में तब आया जब 25 सितम्बर को उपेन्द्र की मौत हो गयी। आक्रोशित मज़दूरों को शान्त करने के लिए प्रशासन ने मैनेजमेंट से उपेन्द्र के परिवार को डेढ़ लाख रुपये मुआवजे के रूप में देने की घोषणा की और ए-5 के मज़दूरों की कुछ मांगें मान लीं। किसी समझदार-परिपक्व नेतृत्व के अभाव में पहले से ही अफरा-तफ़री के माहौल में चल रहा आन्दोलन खोखले आश्वासनों के बाद टूट गया। हत्यारे ड्राइवर या साजिश में शामिल मैनेजमेंट व पुलिस के खिलाफ कार्रवाई का कोई ठोस आश्वासन नहीं मिला।

यहां गौरतलब है कि **गारमेक्स** में भारतीय मज़दूर संघ से सम्बद्ध एक यूनियन होने के बावजूद आन्दोलन का नेतृत्व विजय चंचल नामक एक घोर कैरियरवादी बाहरी मसखरा कर रहा था जो मज़दूरों के इस संघर्ष के बूते अपनी राजनीति चमकाने के मंसूबे बांध रहा था। इस कम्पनी में मालिकान ने शातिराना ढंग से पहले 36 मज़दूरों को निलम्बित कर दिया था फिर गुपचुप ढंग से तालाबन्दी कर दी। मज़दूरों को इस तालाबन्दी की भनक तक नहीं लगी। लेकिन मज़दूरों के किसी अन्य समझदार नेतृत्व के अभाव में उक्त मसखरा ही नेतृत्व सम्भाले हुए था जिसका नतीजा यह हुआ कि तालाबन्दी के खिलाफ संघर्ष को केन्द्रित करने के बजाय 36 मज़दूरों के निलम्बन का मुद्दा ही केन्द्र में बना रहा। मज़दूरों को जब तालाबन्दी के बारे में पता चला तब तक उपेन्द्र की मौत के बाद की परिस्थिति में आन्दोलन वापस लिया जा चुका था।

ई-10 का संघर्ष

इसके पूर्व ठीक इसी तरह **शाही एक्सपोर्ट** (ई-10) का शानदार आन्दोलन भी लगभग तीन सप्ताह चलने के बाद एक विश्वासघाती समझौते के जरिये वापस ले लिया गया था। यहां अपने जायज़ हकों की मांग करने की सज़ा के तौर पर मैनेजमेंट द्वारा 57 मज़दूरों को पिछले 16 अगस्त को काम पर आने से जबरिया रोक दिया गया था।

दरअसल, मैनेजमेंट इन मज़दूरों से तभी से नाराज था जब पिछली 9 जुलाई को मज़दूरों के इंक्रीमेंट में मनमाना बढ़ोत्तरी करने के खिलाफ मज़दूरों का एक प्रतिनिधिमंडल मैनेजमेंट से मिला था। मज़दूरों ने मांग रखी थी कि इंक्रीमेंट का एक समान पैमाना लागू कर सबको 20 प्रतिशत की दर से वेतन वृद्धि की जाये। जबकि मैनेजमेंट एक तो 8.5 प्रतिशत से ज़्यादा किसी भी कीमत पर देने को तैयार नहीं था और दूसरे इसे भी मनमाने ढंग से लागू किया गया था। अपने चहेतों को अधिक व बाकी को कम दिया गया था। लेकिन मज़दूरों की मैनेजमेंट ने कोई यूनियन भी नहीं बनने दी थी। लेकिन काम पर आने से रोके गये अपने साथियों के प्रति एकजुटता दिखाते हुए सभी मज़दूरों ने स्वतःस्फूर्त ढंग से मैनेजमेंट से लोहा लेना शुरू किया कि जब तक 57 निलम्बित साथियों को काम पर वापस नहीं लिया जाता तब तक वे भी काम नहीं करेंगे। इस प्रतिरोध में कम्पनी में कार्यरत महिला मज़दूरों ने, जो कुल मज़दूरों के आधे से भी ज़्यादा हैं, काफी बहादुरी से हिस्सा लिया। लेकिन मैनेजमेंट और डी.एल.सी. ने न केवल टालू रवैया अख़्तियार किया वरन गाली-गलौज की, तरह-तरह की धमकियां दीं और यहां तक कि पुलिस के जरिये बर्बर लाठीचार्ज भी कराया। यही नहीं, पुलिस के सिपाहियों ने महिला मज़दूरों के साथ बदसलूकी भी की।

दरअसल, मैनेजमेंट ने यहां अपने रवैये से जबर्दस्ती मज़दूरों पर हड़ताल थोप दी। मज़दूरों और मैनेजमेंट की इस रस्साकशी के बाद मज़दूरों के आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए शिवसेना से जुड़े कुछ धन्धेबाज नेताओं ने पदार्पण किया। लेकिन इन नेताओं ने आन्दोलन को व्यापक रूप देने और संगठित करने की कोई कोशिश नहीं की। इतना ही नहीं, जब **गारमेक्स** और ए-5 के मज़दूरों ने खुद पहलकदमी लेकर एक संयुक्त संघर्ष समिति बनाकर तीनों कम्पनियों के मज़दूरों की एक व्यापक एकता बनाने की कोशिश की तो इसे भी इन नेताओं ने आगे बढ़ने नहीं दिया। ये स्वयंभू नेता शाही एक्सपोर्ट के संघर्षरत आम मज़दूरों को शिवसेना का सदस्य बनाने में जुटे रहे। मज़दूरों के बार-बार पूछने पर भी इन्होंने डी.एल.सी. और मैनेजमेंट से चल रही वार्ताओं के बारे में उन्हें पूरी तरह अंधेरे में रखा। नतीजा हुआ एक विश्वासघाती समझौता।

नेताओं का विश्वासघात

विगत 8 सितम्बर को शिवसेना के पदाधिकारियों, प्रशासन और मैनेजमेंट के प्रतिनिधियों के बीच जो दो सूत्री समझौता पत्र तैयार हुआ उसमें सिर्फ यह लिखा गया कि "57 निलम्बित कर्मचारियों के विरुद्ध प्रबन्ध तंत्र 45 दिन में जांच पूर्ण कराकर आदेश पारित करेगा और तदनुसार नियमानुसार कार्रवाई करेगा।" इसके अतिरिक्त 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धान्त के अनुसार दिनांक 16.8.2001 से 8.9.2001 तक की अवधि का वेतन भी काट लिया गया। जबकि वास्तविकता यह थी कि मज़दूर स्वयं हड़ताल पर नहीं गये थे। मैनेजमेंट ने उन्हें काम पर आने से रोक रखा था। मज़दूरों का सिर्फ यह कहना था कि वे काम करने के लिए तैयार हैं बशर्ते 57 निलम्बित मज़दूरों को भी काम पर लिया जाये। मज़दूरों ने इंक्रीमेंट की विसंगतियां दूर करने, पे स्लिप देने, परमानेंट लेटर देने, महिलाओं-पुरुषों का वेतन बराबर करने, वर्दी, जूता, डाक्टर की सुविधा, कैंटीन, क्रैच, बस आदि की सुविधा देने सम्बन्धी जो सलाह

(पेज 10 पर जारी)

बंधुआ मुक्ति से मुक्त बाजार व्यवस्था की गुलामी तक

शरद कुमार

झारखण्ड के देवघर जिले में सुप्रीम कोर्ट के आदेश से मुक्त कराये गये सैकड़ों बंधुआ मजदूर आज फिर अपने पुराने मालिकों के खेतों या ईंट-भट्ठों पर काम कर रहे हैं। उन्हें कोई जबरन पकड़ कर या धमका कर नहीं लाया है, वे अपनी मर्जी से काम कर रहे हैं।

पुराने मालिक की बर्बर दासता से मुक्त होते समय इन बंधुआ मजदूरों ने सोचा था कि वे अब आज़ादी की खुली हवा में सांस ले सकेंगे। अपनी मर्जी से काम करेंगे। लेकिन जल्दी ही उन्होंने खुद को एक नई गुलामी की दमघोंटू हवा में हांफते हुए पाया। वे अब आज़ाद थे मुक्त बाजार व्यवस्था में लुटने-पिटने और भूखों मरने के लिए।

(अंग्रेजी साप्ताहिक 'आउटलुक') की एक रिपोर्ट के मुताबिक बसुमाडीह गांव के काशी महरा के पुरखे 100 साल से गांव के जमींदार के खेतों पर काम करते आ रहे थे। अचानक 1992 में एक दिन उसे पता चला कि अब मालिक के लिए काम करना उसकी मजबूरी नहीं रह गयी है। उस दिन काशी बहुत खुश और उत्साहित था। उसे विश्वास था कि चार जनों के अपने परिवार को पेट भर खाना खिलाने का उसका सपना अब पूरा हो जायेगा। लेकिन यह तब की बात थी। आज काशी टूट चुका है। उसकी आज़ादी प्रच्छन्न दासता में बदल चुकी है। चार साल में काशी और उसके परिवार ने दासता-मुक्ति प्रच्छन्न दासता का चक्र पूरा कर लिया है। 1992 में वे मुक्त कराये गये और 1996 में वापस पुराने दुबे जी के भट्ठे और खेत में काम करने लौट आये। आज वह और उसकी पत्नी दुबे के भट्ठे पर 40 रुपये रोज पर काम करते हैं। कटाई के मौसम में दोनों दुबे के खेतों में मजदूरी करते हैं। काशी कहता है, "बंधुआ थे तो पेट तो चलता था पर अब तो फ्री होने पर पेट भी नहीं चलता है। काम ही नहीं मिलता है। खाली पेट मुक्ति कैसी?" महीने के ज़्यादातर दिनों में काशी और उसकी पत्नी को काम नहीं मिलता और बच्चों सहित पूरा परिवार खाने को भी मोहताज रह जाता है। यह व्यथा-कथा अकेले काशी की नहीं है।

एक एन.जी.ओ. की याचिका पर सुप्रीम कोर्ट के आदेश से देवघर के करीब 2600 बंधुआ मजदूर 1992 में मुक्त कराये गये थे। इनमें से करीब 150 अपने पुराने मालिक-किसानों या भट्ठा मालिकों के पास बेहद कम मज़दूरी पर काम करने के लिए लौट गये हैं। बाकी में से ज़्यादातर देवघर और आसपास में दिहाड़ी कर रहे हैं। बंधुआगिरी के समय मिलने वाले दो किलो धान के बदले अब उन्हें 20 रुपये की दिहाड़ी मिलती है। और माना जाये तो उनकी स्थिति पहले से बेहतर है क्योंकि तकनीकी रूप से अब वे एक ज़्यादा "उदार" व्यवस्था के हिस्से हैं जहां उन्हें कोई काम करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता – वे अपनी मर्जी से काम करते हैं और नकद मजदूरी पाते हैं।

लेकिन आज हालत यह है कि जो लोग पुराने मालिकों के पास नहीं लौटे हैं वे भूखों मरने की हालत में हैं। देवघर की दो मज़दूर मण्डियों-आज़ादपुर चौक और बजाला चौक में सैकड़ों की तादाद में ये "मुक्त" मज़दूर रोज सुबह सात बजे से काम की तलाश में भीड़ लगाये रहते हैं। कुछ ही को रोज 45 रुपये की दिहाड़ी मिल पाती है। बाकी या तो वापस लौट जाते हैं या 20 रुपये रोज पर पुराने मालिकों के वहां वापस खटने चले जाते हैं।

सतरा गांव का बासुदेव महरा पिछले दस साल से हर रोज बजाला चौक पर अपना श्रम बेचने आता है। इससे पहले वह अपने मालिक नंदूजी का बंधुआ मज़दूर था और सिर्फ डेढ़ किलो अनाज के बदले उनके खेत पर काम करता था। आज बासुदेव मुक्त है लेकिन अकसर उसे 45 रुपयक रोज की दिहाड़ी भी नहीं मिलती। कभी-कभी बीस रुपये रोज पर बीड़ी बनाने का काम मिल जाता है। बासुदेव अपने मालिक के पास फिर नहीं लौटना चाहता। लेकिन वह कहता है, "पापी पेट के लिए करना ही पड़ेगा।" ऐसी हालत सिर्फ देवघर के इन "मुक्त" हुए मज़दूरों की हो, ऐसा नहीं है। सामन्ती अर्द्धदासता या जमीन के छोटे से टुकड़े के बन्धन से मुक्त होकर श्रम के मुक्त बाजार में पहुंचे करोड़ों मज़दूर ऐसे ही अस्तित्व के संकट से लड़ रहे हैं। पहले ग्रामीण क्षेत्र में इन मज़दूरों को साल में सात-आठ महीने काम मिल जाता था। लेकिन आजकल खरपतवार नाशक रसायनों, रासायनिक खादों, ट्रैक्टर, थ्रेशर, ट्यूबवेल, हार्वेस्टर आदि के आ जाने से बड़ी मुश्किल से साल में एक-डेढ़ महीने ही काम मिल पाता है। इस पर भी मज़दूरी की दर 25 से 30 रुपये से ज़्यादा नहीं है जबकि खेतों में 10 से 12 घण्टे तक काम करना पड़ता है। यह मुसीबत इसलिए और भी बढ़ जाती है कि जो थोड़ा-बहुत काम मिलता भी है वह ज़्यादातर मध्यम किसानों के यहां मिलता है जो खुद ही पूंजीवादी खेती के कारण तबाह और तंगहाल है। खाद-बीज-जोताई-बोवाई-सिंचाई-मड़ाई-ढुलाई आदि की महंगाई से मध्यम किसानों की कमर भी टूटी है। हरियाणा और पंजाब के खेतों में भी अब पिछड़े इलाकों के मज़दूरों के लिए काम पहले से काफी कम रह गया है।

ग्रामीण क्षेत्र के ईंट भट्ठा जैसे

(पेज 11 पर जारी)

भारत सरकार द्वारा गठित व्यय सुधार आयोग की रिपोर्ट

डाक कर्मचारियों एवं आम जनता के अधिकारों पर नग्न हमला

(बिगुल प्रतिनिधि)

आजकल सरकार को सरकारी व्यय घटाने की बहुत चिन्ता रहती है। और हो भी क्यों न, आई.एम.एफ., वर्ल्ड बैंक और फिक्की में बैठे उसके आका लगातार उसके कान जो, उमेठते रहते हैं। खर्च कम करने का सवाल जब भी आता है, तो सरकार की नज़र अपने मॉलियों, नौकरशाहों के लगातार बढ़ रहे वेतन-भत्तों पर न जाकर, आम मज़दूर-कर्मचारियों के वेतन भत्तों पर जाती है। उदारीकरण-निजीकरण और भूमंडलीकरण की नीतियों का मतलब ही है कि कैसे आम मेहनतकश आबादी को अधिकतम सीमा तक निचोड़ा जाय और कैसे उसकी जेब काटी जाय। व्यय सुधार आयोग की रिपोर्ट, जिसे वित्त मंत्रालय के नौकरशाहों ने तैयार किया है, डाक विभाग के कर्मचारियों की जेब ही नहीं, गर्दन भी काटने का एक कार्यक्रम है।

गौरतलब है कि अभी कुछ ही दिनों पहले रेल विभाग और उसके कर्मचारियों के लिए ऐसी ही ख़तरनाक योजना राकेश मोहन कमेटी की रिपोर्ट में रखी गई थी, और उसे तेजी से लागू भी किया जा रहा है। बैंक, बीमा, टेलीकम्युनिकेशन, बिजली तथा तमाम सरकारी उपक्रमों में नई आर्थिक नीतियों के तहत इस तरह का वैधानिक एवं संरचनात्मक बदलाव पहले ही किया जा चुका है ताकि देशी-विदेशी पूंजीपतियों को जनता के गाढ़े पसीने की कमाई को लूंटने का मौका मिले।

आम मेहनतकश जनता के श्रम और संसाधनों के बल पर देश के समस्त सरकारी उद्यम खड़े किये गये थे। इसमें पूंजीपतियों का जरा भी योगदान नहीं था। डाक विभाग भी इसका अपवाद नहीं है। ये समस्त सरकारी उद्योग इस पूंजीवादी व्यवस्था में मुख्यत: पूंजीपतियों को ही लाभ पहुंचाते थे, लेकिन जनता और कर्मचारी हितों का एक मुखौटा लगाकर। इन उद्यमों को इस देश का पूंजीपति वर्ग अपनी पूंजी की ताकत से खड़ा करने का औकात नहीं रखता था, क्योंकि इसके लिए विशालकाय पूंजी की आवश्यकता थी। अब, ये सरकारी उद्योग जब पूरी तरह खड़े हो गये तो मंदी की मार से बेहाल लुटेरे पूंजीपति इन सरकारी उद्यमों के मुनाफे को हड़पने का अधिकार चाहते हैं और सरकारी क्षेत्र के देशव्यापी नेटवर्क का इस्तेमाल व्यक्तिगत लाभ के लिए करना चाहते हैं।

नई आर्थिक नीतियों का अर्थ ही है सरकारी क्षेत्र में निजी पूंजीपतियों को हिस्सेदार बनाना या पूर्ण मालिकाना देना ताकि वे जनता को लूट सकें, दूसरी ओर, इन सरकारी उद्यमों में कार्यरत मज़दूरों-कर्मचारियों को नौकरी, वेतन, भत्ते, प्रोन्नति, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सुविधाओं के प्रति जो कानूनी बाध्यता थी उसे समाप्त करके उन्हें ठेका मज़दूर बना देना। लेकिन ये अधिकार कर्मचारियों ने अपने संघर्षों से हासिल किया था, इसलिए इन्हें एकाएक छीनना भी आसान नहीं था। इसलिए डाक विभाग में इन नीतियों को पिछले 15 वर्षों से किश्तों में लागू किया जा रहा है। ठेके पर काम करवाना, कम्प्यूटराइजेशन करना और नई भर्ती पर रोक तभी से चल रहा है। अब पूरी तरह से पूंजीपतियों के लिए मुनाफा पैदा करने वाली संस्था में उसे तब्दील करने के लिए व्यय सुधार कमेटी ने ठोस संस्तुतियां दी हैं।

इसके लिए कमेटी का कहना है कि डाक विभाग का कानून काफी पुराना (1898) पड़ चुका है। इसे बदलना पड़ेगा। इसे इस तरह बदला जाय कि निजी क्षेत्र के कूरियर्स/संस्थाओं को कानूनी सुरक्षा दी जा सके तथा डाक विभाग का एकाधिकार समाप्त हो। यहां पर चिन्ता कर्मचारियों की नहीं बल्कि निजी पूंजीपतियों की है। इसका यह भी कहना है कि लिखित पत्रों के आदान-प्रदान की व्यवस्था अब पुरानी पड़ चुकी है और विभाग के लिए बोझ बनती जा रही है। इसकी जगह अब नई इलेक्ट्रानिक डाक ले रही है, इसे ही प्रोत्साहित करना चाहिए। जाहिर है ई. मेल. हाइब्रिड मेल का इस्तेमाल पूरे देश की आबादी का कौन सा हिस्सा करता है?

रिपोर्ट कहती है कि पूरे विश्व में डाक विभाग का निगमीकरण किया जा चुका है अत: भारत में भी डाक निगम बनाना होगा। निगम का सीधा अर्थ है कम्पनी का मुनाफा सर्वोपरि होगा कर्मचारियों और जनता का हित उसके मातहत होगा। निगम बनाने के बाद उसके प्रबन्धन में निजी पूंजीपतियों को घुसाना भी आसान हो जायेगा। निगमीकरण के साथ-साथ, रिपोर्ट यह भी कहती है कि डाक विभाग द्वारा प्रदत्त सेवाओं का मूल्य बाजार दर पर लेना चाहिए। डाक शुल्क में वृद्धि का अधिकार संसद को नहीं विभाग के प्रबन्ध कमेटी को मिलना चाहिए तथा इसके लिए नियमों में आवश्यक संशोधन करना होगा। इसका सीधा अर्थ यह है कि इन सेवाओं के लिए जो सब्सिडी दी जाती थी वह पूरी तरह समाप्त कर दिया जाय। जैसे बिजली, पानी, फोन, ईंधन, सस्ते अनाज तथा अन्य चीज़ों में किया गया वैसे ही यहां भी किया जाय। नई अर्थव्यवस्था में जनता को राहत देना अपराध है। राहत, छूट, सब्सिडी का अधिकारी सिर्फ पूंजीपति वर्ग है और आम मेहनतकश जनता मात्र पूंजी पैदा करने का संसाधन।

रिपोर्ट यह भी कहती है कि डाक विभाग के सम्पत्तियों, भूखण्डों को या तो बेच देना चाहिए या किराए पर दे देना चाहिए। जाहिर है कि इसका फायदा किसे मिलेगा, भूमि-माफियाओं, नौकरशाहों और पूंजीपतियों को ही। डाक विभाग के व्यापक नेटवर्क का इस्तेमाल बैंक, बीमा और म्युचुअल फंड कम्पनियों के वित्तीय उत्पादों के वितरण के लिए करने की व्यवस्था की जाय। इसका सीधा अर्थ यह कि इसे परोक्षतय: सट्टा बाजार से जोड़ दिया जाय। सट्टेबाजों, पूंजीपतियों की निगाह डाक विभाग द्वारा ग़रीब जनता से लघु बचत के रूप में इकट्ठा की जाने वाली विशाल पूंजी पर है। इस पैसे को वे हड़पना चाहते हैं।

अब देखें कि कमेटी की रिपोर्ट कर्मचारी हितों के बारे में क्या कहती है? वह कहती है कि भर्ती पर पूर्ण पाबन्दी लगाई जाय, मेल मोटर सर्विस को समाप्त किया जाय, डाक लेखा कार्यालय अब अनुपयोगी हो चुका है उसे धीरे-धीरे बन्द कर दिया जाय, निर्माण विभाग, रखरखाव विभाग समाप्त करके ठेके पर काम करवाया जाय। वर्ग-द के पदों को समाप्त करके पूरा काम ठेके पर दे दिया जाय। एक और दो कर्मचारियों वाले डाकघरों को बन्द करके यह काम कमीशन पर निजी एजेन्टों को दे दिया जाय। ग्रामीण डाक सेवाओं को ग्राम पंचायतों, ग्रामीण सहकारी संस्थाओं को दे दिया जाय। डाक के घर-घर वितरण को धीरे-धीरे कम किया जाय। डाक बचत बैंक के कार्य को सभी डाकघरों से समाप्त करके एक-दो चुनिन्दा डाक घरों तक सीमित कर दिया जाय। कर्मचारियों के कार्य के नये मानक तय किए जायें। इन बातों का सीधा अर्थ है कि यदि ये बुनियादी कार्य समाप्त कर दिए जायेंगे तो डाक विभाग के आधे से अधिक (कुल कर्मचारी 6 लाख हैं) बेकार हो जायेंगे। इन बेकारों के लिए सरकार वी. आर.एस. ला रही है। या तो वी.आर. एस. लेकर घर जाइये, नहीं तो बाद में धक्के मारकर ढकेल दिया जायेगा। श्रम कानूनों में भी इसी के अनुरूप बदलाव किया जा रहा है।

कुल मिलाकर इन नीतियों के लागू होने पर डाक विभाग पूंजीपति वर्ग की एक प्रा.लि. कम्पनी बन जायेगी जिसका जनता और कर्मचारियों के हितों से कुछ भी लेना देना नहीं होगा। वर्तमान सरकार के प्रधानमन्त्री, वित्तमन्त्री और अन्य तमाम मंत्री इन नीतियों को कठोरता से अमल में लाने की अपनी वचनबद्धता लगातार दुहराते रहते हैं। यही नहीं, इन नीतियों को लागू करने के साथ-साथ वे ऐसे ग़ैर-ज़रूरी मुद्दे भी खड़ा करते चल रहे हैं जिससे मज़दूर आन्दोलन को बांटा जा सके, उसका दमन किया जा सके। वर्तमान ट्रेड यूनियन नेतृत्व की गद्दारी से डाक कर्मियों के पिछले शानदार आन्दोलन की पराजय ने, पूरे देश के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के बिखराव ने लुटेरों के लिए माकूल जमीन तैयार की है।

चुनावी वामपंथी पार्टियों से जुड़ा ट्रेड-यूनियन नेतृत्व पहले ही इन नीतियों के सामने घुटना टेक चुका है। इनकी अर्थवादी कार्यनीतियों ने मज़दूर आंदोलन को खंड-खंड में बांट दिया है। मज़दूर वर्ग को राजनीति से काटकर उसे कमजोर और असहाय बना दिया है। दूसरी तरफ पूंजीवादी चुनावी पार्टियों की यूनियनें हैं जैसे – इंटक, बी.एम.एस.। इनका तो गठन ही मजदूर आंदोलन की पीठ में छुरा भोंकने के लिए किया गया था। इनका काम ही है कि मज़दूर वर्ग को पूंजीपति वर्ग और उसकी सरकार का पिछलग्गू बनाया जाय ताकि मज़दूर आंदोलन को व्यवस्था विरोधी होने से रोका जा सके। इन यूनियनों के नेतृत्व की कलई पूरी तरह खुल चुकी है।

अब प्रश्न है नये क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करने का। हम सत्ताधारी वर्ग के इस हमले के समय चुप नहीं बैठ सकते। बेशक, हमारा संकट गंभीर है और हमारा अस्तित्व ही खतरे में है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पूंजीपति वर्ग का अस्तित्व हमसे अधिक संकट में है। ऐसा पूंजीपति वर्ग के प्रवक्ता खुद ही स्वीकार कर रहे हैं। वे बौखलाहट में जनता के हर तबके पर युद्ध, तबाही, बर्बादी थोप रहे हैं। उनकी काली नीतियां व्यापक मेहनतकश आबादी की क्रान्तिकारी एकजुटता का आधार निर्मित कर रही हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि मज़दूर कर्मचारी वर्ग खुद आगे बढ़कर नये लड़ाकू मंचों, मोर्चों का गठन करें। अपने हितों को व्यापक आबादी के हितों के साथ जोड़ें। अपने कार्यों-संघर्षों से आम मेहनतकश आबादी के आकांक्षाओं को एक क्रान्तिकारी स्वर और दिशा दें। आने वाला कल मज़दूर वर्ग का है।

यू.टी.आई., बैंक व डाक विभाग में करार

जनता की गाढ़ी कमाई पर डकैती का एक और रास्ता खुला

शेयर के धंधे में आकंठ डूबी और एक बड़े घोटाले से मोटी रकम डकार लेने के बाद यू.टी.आई., बैंक ने आम जनता की गाढ़ी कमाई को लीलने के लिए डाक विभाग से एक नया करार किया है। इस करार के मुताबिक दोनों संस्थान एक-दूसरे की मूल्यवर्धित सेवाओं की बिक्री अपनी शाखाओं व केन्द्रों पर करेंगे। पोस्ट आफिसों में ए.टी.एम. खोले जाएंगे, डाक विभाग के वित्तीय उत्पादों के एवज में यू.टी.आई., बैंक ऋण देगी। डाक विभाग के 1.5 लाख कार्यालयों और देश के कोने-कोने तक विस्तारित नेटवर्क का यू.टी.आई. सीधे लाभ उठाएगा। इसके साथ ही डाक में जमा ग़रीब मेहनतकश जनता के अरबों रुपयों पर गिद्ध दृष्टि टिकाए देशी-विदेशी पूंजीवादी लुटेरों की सेवा में यू.टी.आई. उसे अर्पित कर देगा।

इस समझौते में सरकार की बदनीयती का प्रमाण तत्कालीन संचार मंत्री राम विलास पासवान द्वारा उस समय दिये गये बयान से ही मिल जाता है। पासवान ने कहा था कि 'डाक विभाग को पूरी तरह से लाभ आधारित संस्थान नहीं बनाया जा सकता है, लेकिन इसके बुनियादी ढांचे का उपयोग वित्तीय लाभ के लिए किया जा सकता है।'

दरअसल पूंजीवादी अर्थतंत्र के संचालन के लिए अपरिहार्य और संपूर्ण संचार तंत्र की डाक विभाग देश की वित्तीय पूंजी के तंत्र का भी एक अहम अंग है। देश के किसी भी बैंक से डाक विभाग का बैंकिंग कार्य कई गुना अधिक बड़ा है। पूरे देश के डेढ़ लाख छोटे-बड़े डाकघरों में 11 करोड़ बचत बैंक के खाते हैं, जिनमें 1,82,205 करोड़ रुपये जमा हैं। इसके अतिरिक्त बचत पत्रों की बिक्री से डाक विभाग प्रतिवर्ष 80,000 करोड़ रुपये इकट्ठा करता है। मौजूदा समय में डाक द्वारा एकत्र की जाने वाली पूंजी बैंक द्वारा इकट्ठा की जाने वाली कुल पूंजी से अधिक है। इसके अलावा 'डाक जीवन बीमा' के नाम पर देश के कर्मचारियों की भी एक भारी रकम डाक विभाग इकट्ठा करता है। अब तक यह पूरी पूंजी देश के विकास के नाम पर वस्तुत: पूंजीवादी ढांचागत व अवरचनागत विकास कार्यों तथा सार्वजनिक उपक्रमों में निवेश होती रही है। अब पूंजीपति इस बड़ी रकम को सीधे हड़प लेना चाहते हैं। यू.टी.आई. के माध्यम से यह राशि सीधे शेयर बाज़ार पहुंचेगी अथवा पूंजीपतियों के पास कर्ज/अनुदान के रूप में पहुंच जाएगी।

यू.टी.आई. के करोड़ों रुपये के घोटाले (यू.एस.64) की भरपाई भी डाक के पैसों से ही जाएगी। यहीं यह भी गौतलब बात है कि बैंकों में तो आमतौर पर मध्य वर्ग और अमीर वर्ग पैसा जमा करता है जबकि डाकखाने में आमतौर पर ग़रीब आदमी। यानी यह डकैती सीधे ग़रीबों के खून-पसीने पर होगी। इस पर पूरी दुनिया के धनपशुओं की निगाह है। ग़रीबों से पैसा उगाहने में डाक विभाग की भूमिका की प्रचुर संभावनाओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने "विकास के लिए डाक बचत" नाम से एक विशेष प्रोजेक्ट ले रखा है, जिसका उद्देश्य ही है – बचत के नाम पर ग़रीब जनता को और ज़्यादा निचोड़ना।

कुल मिलाकर, उदारीकरण के इस नये लुटेरे दौर में विश्व साम्राज्यवादी चौधरियों और देशी पूंजीपतियों के नापाक गठबन्धन द्वारा आम जनता को लूटने-निचोड़ने और उनके खून-पसीने को टकसाल में ढालने का जो वैश्विक खेल चल रहा है, यू.टी.आई., बैंक व डाक विभाग का मौजूदा करार उसी की एक और कड़ी है। आम जनता को इस सच्चाई को समझना होगा और लुटेरों के क्रियाकर्म की तैयारी में जुट जाना होगा।

राम मोहन

बीमा संशोधन बिल लोक सभा में पेश

अब बीमा सेक्टर में भी दलालों की चांदी होगी

अब बीमा सेक्टर को भी दलालों (मध्यस्थों) के खेल का मैदान बनाने की तैयारी पूरी हो गई है। इसके लिए वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने लोक सभा में विगत 16 अगस्त को 'बीमा संशोधन विधेयक' पेश कर दिया। कांग्रेस इस मुद्दे पर भाजपा नेतृत्व वाले राजग सरकार के पक्ष में पहले से ही है, संसदीय वामपंथी और कुछ अन्य क्षेत्रीय पार्टियां कुछ रस्मी विरोध की खानापूर्ति करेंगी और यह विधेयक भी पास हो जाएगा।

विधेयक पेश करते हुए वित्त मंत्री ने विश्व के कई देशों का हवाला देते हुए कहा कि बीमा क्षेत्र के वर्तमान एजेण्ट कम्पनियों की तरफ से काम करते हैं, लेकिन उपभोक्ताओं के हितों को देखते हुए उन्हें सलाह देने वाला कोई नहीं है, जिस कारण से बीमा क्षेत्र को मध्यस्थों के लिए खोलने का फैसला लिया गया है।

दरअसल, जनता की गाढ़ी कमाई से एकत्रित बीमा सेक्टर के पास अरबों की जो सम्पत्ति पड़ी हुई है, उस पर देशी पूंजीपतियों और विश्व साम्राज्यवादियों की ललचाई निगाहें गड़ी हुई थी, जिसने बीमा के निजीकरण का रास्ता खोला था। इसी दौलत पर, विश्व पूंजीवाद की जारज औलादों – दलालों की भी जीभ लपलपाती रही है। बैंकों में हुंडियों के खरीदने और बेचने (यानी एस.एल.आर.) के धन्धे में मध्यस्थता (दलाली) का मजा चख चुके दलाल इस मौके की बड़ी बेसब्री से

(पेज 10 पर जारी)

आतंकवाद खत्म करने की आड़ में अमेरिकी साम्राज्यवादी...

(पेज 1 से आगे)

ही है। इसलिए, न्यूयार्क और वाशिंगटन के नरसंहार की जिम्मेदारी सर्वोपरि तौर पर खुद अमेरिकी शासक वर्ग पर ही जाती है। यह अमेरिका के शासक वर्ग ही हैं जिनके हाथ खुद अपनी जनता के खून से रंगे हैं।

विश्व व्यापार केन्द्र पर हमला चाहे ओसामा बिन लादेन के लोगों ने किया हो (हालांकि अब तक अमेरिकी सत्ताधारी इस बारे में कोई ठोस सबूत नहीं दे सके हैं), या चाहे किसी फिलिस्तीनी ग्रुप ने, चाहे लातिनी अमेरिका के किसी आतंकवादी क्रांतिकारी संगठन ने किया हो, या हिरोशिमा-नागासाकी का बदला लेने के लिए जापान की किसी 'रेड आर्मी' ने या फिर अमेरिका के भीतर के ही किसी आतंकवादी ग्रुप ने किया हो, इस नरसंहार की जिम्मेदारी बुनियादी तौर पर उस अमेरिकी शासक वर्ग की ही मानी जायेगी जो फिलिस्तीनियों की नारकीय ज़िन्दगी के लिए, अंगोला और कई अन्य अफ्रीकी देशों में दशकों से जारी खूनी गृहयुद्धों के लिए तथा लातिन अमेरिकी देशों में अपना वर्चस्व बनाये रखने के उद्देश्य से प्रत्यक्ष-परोक्ष सैनिक हस्तक्षेप करते रहने के लिए जिम्मेवार रहा है।

लेकिन इस नरसंहार में मारे गये लोगों के बारे में उन लोगों को सोचने की फुर्सत नहीं है जिनकी मुनाफे की हवस, उससे प्रेरित राजनीति और युद्धों से प्रतिदिन पूरी पृथ्वी पर दसियों हज़ार लोग मौत के मुंह में समा जाते हैं। अपने चिरपरिचित पाखण्ड के तहत आज अमेरिका और यूरोप के सभी देशों की सरकारें और मुख्य धारा की मीडिया "मानवता पर हमले" की बातें कर रही है। लेकिन यह समूचा पाखण्ड इस सच्चाई को नहीं झुठला सकता कि वियतनाम को नापाम बमों और बारूदी सुरंगों से पाट देने वाले, कोरियाई जनता पर कहर बरपा करने के बाद देश को बांट देने वाले, इराक की आर्थिक नाकेबन्दी कर बरसों बम बरसाने वाले और दस लाख इराकी बच्चों की मौत के जिम्मेदार, फिलिस्तीनियों को आधी सदी से बेघर-बेदर भटकने को मजबूर करने वाले, अंगोला में 'यूनिटा' को समर्थन देकर तीस वर्षों से गृहयुद्ध का कहर बरपा करने वाले, चालीस वर्षों से क्यूबा की आर्थिक नाकेबन्दी करने वाले, अतीत में फिलिप्पींस और इंडोनेशिया के तानाशाहों की पीठ पर खड़े होकर लाखों लोगों का कत्लेआम करने वाले तथा पूरे लातिन अमेरिका में लूट के साथ गृहयुद्ध जैसी स्थिति बनाये रखने वाले अमेरिकी सत्ताधारियों के खिलाफ पूरी पृथ्वी पर नफ़रत की भट्ठी धधक रही है।

यह सोचने की बात है कि आज बुश और टोनी ब्लेयर, रीगन, क्लिंटन, थैचर, मेजर आदि आतंकवादियों के हाथों हजारों बेगुनाहों की मौत की भर्त्सना भला किस मुंह से कर रहे हैं? सद्दाम हुसैन को "सजा" देने के नाम पर जब बगदाद पर वे अन्धाधुन्ध बमबारी करते हैं तो क्या उन्हें वहां के बेगुनाह आम लोगों की रत्ती भर भी याद आती है? और यह भी क्या भूलने की बात है कि ईरान के विरुद्ध सद्दाम हुसैन को इस्तेमाल करने और उन्हें भरपूर मदद करके खाड़ी युद्ध को लम्बे समय तक चलाने का काम अमेरिका ने ही किया था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ओसामा बिन लादेन के आतंकवादी ग्रुप को अफगानिस्तान पर हावी सोवियत साम्राज्यवाद और उसके द्वारा समर्थित सत्ता के विरुद्ध अमेरिका ने ही धन, हथियारों और प्रशिक्षण की भरपूर मदद देकर खड़ा किया था और दक्षिण एशिया में अपने हितों के मद्देनज़र उसी ने कभी गुलबुद्दीन हिकमतयार से लेकर तालिबान तक को हर तरह की सहायता दी थी।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अमेरिका न सिर्फ आतंकवाद का संरक्षक-संपोषक रहा है, बल्कि वह स्वयं एक आतंकवादी देश है। वह सामरिक आतंकवाद से लेकर आर्थिक आतंकवाद तक में लिप्त है। न्यूयार्क और वाशिंगटन में हुए आतंकवादी हमले उसके आतंकवाद का आतंकवादी प्रतिकार मात्र हैं। यह एक किस्म का प्रति आतंकवाद (काउंटर टेररिज़्म) है।

अमेरिकी हुक्मरान अपने देश की जनता में भी अलग-थलग पड़े

"अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद" के खिलाफ अपनी जंगी मुहिम के प्रति अमेरिकी हुक्मरानों ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया है। समूचा अन्तरराष्ट्रीय सूचना-समाचार तंत्र अपनी पूरी ताकत के साथ इस मुहिम के पक्ष में जनमत तैयार करने में जुटा हुआ है, लेकिन इसके बावजूद हो यह रहा है कि पूरी दुनिया की जनता इस जंगी मुहिम के खिलाफ एकजुट होती दिखायी दे रही है। जगह-जगह युद्ध विरोधी प्रदर्शनों का सिलसिला जारी है जिनमें अमेरिकी हुक्मरानों को यह चेतावनियां दी जा रही हैं कि वे आतंकवाद को कुचलने के नाम पर अफगानिस्तान की आम जनता पर युद्ध की विभीषिका थोपने और पूरी दुनिया की जनता के जनतांत्रिक अधिकारों पर हमले बन्द करे।

यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि डब्ल्यू.टी.सी. और पेंटागन पर हमले के बाद बेरुत के शरणार्थी शिविरों से लेकर गाजा पट्टी और पश्चिमी तट तक स्त्रियों-बच्चों सहित फिलिस्तीनियों का सैलाब जश्न मनाने सड़कों पर क्यों उतर आया था? यही नहीं, अधिकांश अरब देशों की जनता में, खासकर इराक में जश्न का माहौल क्यों बन गया था? आज अमेरिकी हुक्मरानों के खिलाफ नफ़रत इतनी व्यापक है कि सर्बिया से लेकर लातिन अमेरिका और एशियाई देशों तक में बुद्धिजीवी और छात्र आतंकवाद की भर्त्सना से अधिक चर्चा इस बात की कर रहे हैं कि यह अमेरिका की भूमंडलीय चौधराहट की नीतियों का नतीजा है और यदि इन नीतियों में बदलाव नहीं आया (जिसकी सम्भावना नज़र नहीं आती) तो अब अमेरिकी जनता को इसका खामियाजा भुगतना होगा।

अमेरिका के भीतर भी वही माहौल है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों-कालेजों में छात्र और बुद्धिजीवी प्रमुख रूप से इस बात पर जोर दे रहे हैं कि बदले की कार्रवाई के बजाय अमेरिका को अपनी नीतियां बदलनी चाहिए। कैम्पसों में होने वाली तमाम बैठकों में उन तमाम देशों की सूची गिनायी जा रही है जहां अमेरिका हस्तक्षेप करता रहा है और 'हॉट वायलेंस' को प्रतिदिन के 'कोल्ड वायलेंस' से जोड़ा जा रहा है जिसके कारण हर रोज दुनिया में चालीस हज़ार लोग भूख से मर रहे हैं।

अमेरिका के भीतर अश्वेत मज़दूरों, अमेरिकन इंडियन मूल के आप्रवासी मज़दूरों, गरीब गोरे मज़दूरों और छात्रों में वैसे भी आज कोई अंधराष्ट्रवादी लहर नहीं है। पिछले दिनों अमेरिका में भूमण्डलीकरण की नीतियों के विरुद्ध और फिलिस्तीनियों या इराक के पक्ष में प्रदर्शनों-आन्दोलनों का जो सिलसिला चलता रहा, उसे भी इस स्थिति से जोड़कर देखना चाहिए। स्थिति यह है कि अमेरिकी हितों और राष्ट्रीय सम्मान की दुहाई देकर कोई 'जिंगोवादी' लहर उभाड़ पाना आज अमेरिकी सत्ताधारियों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा कठिन होता जा रहा है। पूरी दुनिया में ज़्यादा से ज़्यादा अलगाव में पड़ते जा रहे अमेरिकी सत्ताधारी अपने देश की जनता में भी अलग-थलग पड़ते जा रहे हैं।

'आज़ादी की सुरक्षा' के नाम पर...

न्यूयार्क और वाशिंगटन पर आतंकवादी कार्रवाई से भरपूर असहमति प्रकट करते हुए और बेगुनाह लोगों के प्रति शोक प्रकट करते हुए भी सच्चाई के इस पहलू की अनदेखी नहीं की जा सकती कि इस हमले से अमेरिकी उद्धत अहम्मन्यता का गुब्बारा तो पंक्चर हुआ ही है, अन्य सभी साम्राज्यवादी हुकूमतें भी एकबारगी अकबका-सी गयी हैं। आखिर, नये "एकध्रुवीय" विश्व के गर्वोन्मत्त चौधरी की नाक पर ततैया ने डंक जो मार दिया है। और फिर 'वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' की इमारत अमेरिकी वित्तीय पूंजी की शक्तिमत्ता का स्मारक थी और पेंटागन मुख्यालय उसकी सामरिक प्रभुता का प्रतीक चिन्ह। लेकिन, यह भी तय है कि किसी भी साम्राज्यवादी देश के शासक की तरह जार्ज बुश विश्व स्तर पर आतंकवाद को बढ़ावा देने वाली अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने की कोई मंशा नहीं रखते।

जार्ज बुश अपने तमाम सहयोगी देशों (आज भारत भी इन सहयोगियों में शामिल है।) के साथ मिलकर आतंकवाद को शिकस्त देने का संकल्प बार-बार दुहरा रहे हैं। लेकिन, मुसीबत यह है कि आज उनकी राह उतनी आसान नज़र नहीं आ रही है। अफ़गानिस्तान पर सीधे हमले की कार्रवाई करने में हिचकिचाहट के कई कारण हैं। एक तो सोवियत साम्राज्यवाद का हश्र अमेरिकी शासकों को दुःस्वप्न बनकर सता रहा है। दूसरे, पूरी दुनिया में और खुद अपने देश के भीतर जो युद्धविरोधी मंहौल बन रहा है, उससे भी उसे सीधा हमला करने के लिए बार-बार पुनर्विचार करने पर बाध्य होना पड़ रहा है। साथ ही अफ़गानिस्तान पर सीधी कार्रवाई को लेकर खुद अमेरिकी शासकों व 'नाटो' के भीतर भी फांक मौजूद है। अमेरिकी हुक्मरान फूंक-फूंककर कदम रख रहे हैं और 'आतंकवाद के खिलाफ एक दीर्घकालिक युद्ध' की रणनीति की बातें उनकी इन्हीं दुविधाओं को दर्शा रही है।

अमेरिकी रणनीतिकारों ने 'आतंकवाद के ख़िलाफ इस दीर्घकालिक युद्ध' को पहले 'अपरिमित न्याय का अभियान' नाम दिया था जिसे बदलकर अब उन्होंने 'आज़ादी की सुरक्षा के लिए अभियान' नाम दिया है। इस अमेरिकी अभियान के पीछे दुनिया की जनता के प्रति अपरिमित अन्याय के जो ख़तरनाक इरादे छुपे हैं आज उन्हें साफ-साफ समझने और उसके ख़िलाफ एकजुट होने की जरूरत है।

अमेरिका के इस अभियान का एक प्रमुख बिन्दु यह है कि वह सिर्फ ओसामा बिन लादेन को 'जिन्दा या मुर्दा' पकड़ने के बजाय यदि सम्भव हो तो तालिबानी हुकूमत का तख़्ता पलटकर वहां अपनी कोई कठपुतली सरकार बिठाकर दक्षिण एशिया में अपनी एक स्थायी फौजी चौकी क़ायम करने का पक्का इन्तज़ाम कर लेना चाहता है। तालिबान विरोधी नार्दन एलाएंस और अफगानिस्तान के पूर्व शाह ज़हीर के बीच तालमेल कर हर तरह की सैनिक-असैनिक मदद के ज़रिये तालिबान को अपदस्थ करने की योजना इसी रणनीति का अंग है। लेकिन, अमेरिकी हुक्मरान इस विकल्प के बारे में भी दुविधा से मुक्त नहीं हैं। नार्दन एलाएंस के साथ रूसियों की भी क़रीबी और इस आशंका से कि कहीं नयी हुकूमत भी बागी न हो जाये, इस दिशा में फैसलाकुन ढंग से कदम उठाने के पहले वे काफी आगा-पीछा सोच रहे हैं।

'आज़ादी की सुरक्षा' के नाम पर शुरू हुए इस अभियान के पीछे दूसरा ख़तरनाक मकसद यह है कि आतंकवाद को कुचलने के नाम पर पूरी दुनिया की जनता की नागरिक आज़ादी और जनतांत्रिक अधिकारों को ही कुचल दिया जाये। अमेरिकी विदेश मंत्री कोलिन पॉवेल का यह बयान कि दुनिया में किसी भी चुनी हुई सरकार को चुनौती देना आतंकवादी कार्रवाई मानी जायेगी अमेरिकी हुक्मरानों के नापाक इरादों को जाहिर कर देता है। अमेरिका के इस मकसद के साथ समूची दुनिया के लुटेरे शासक खड़े हैं, इसीलिए वे अमेरिका के सुर में सुर मिलाकर आतंकवाद के खिलाफ एकजुटता प्रदर्शित कर रहे हैं। दुनिया के ये लुटेरे शासक यह अच्छी तरह समझ रहे हैं कि भूमण्डलीकरण की नीतियों के नतीजे दुनियाभर में मेहनतकश जनता के भीतर जिस आक्रोश के बारूद को जमा करते जा रहे हैं वह आने वाले समय में प्रचण्ड जनविस्फोटों के सिलसिले को जन्म देगा। आतंकवाद को कुलचने के बहाने इस भावी जनविस्फोट को कुचलने की तैयारियां करना इस अभियान का दूसरा प्रमुख मकसद है। आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी सुर में सुर मिलाने के पीछे भारतीय शासक वर्गों की तमाम जरूरतों और मजबूरियों में यह जरूरत भी प्रमुख है।

न आतंकवाद के साथ न अमेरिकी लुटेरों के साथ, मेहनतकश अवाम के सामने जनक्रान्ति ही एकमात्र विकल्प

आतंकवाद को कुचलने के नाम पर शुरू किये गये इस अभियान के पक्ष में खड़े होने का आह्वान करते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने धृष्टतापूर्ण अहंकार के साथ यह कहा है कि 'या तो आप अमेरिका के साथ हैं या आतंकवाद के'। लेकिन, दुनिया की मेहनतकश जनता और वे सभी लोग जिन्हें दुनिया भर में अमेरिका के खूनी कारनामे भूले नहीं हैं, इस दम्भपूर्ण ललकार पर सिर्फ हंस सकते हैं। मेहनतकश अवाम किस रास्ते पर चले, इसके बारे में नसीहत देने की हिमाकत वही कर सकता है जो इतिहास से कभी कोई सबक नहीं लेता। आतंकवाद को कुचलने के नाम पर अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने सहयोगियों और लग्गुओं-भग्गुओं के साथ चाहे जिस रणनीति पर अमल करें, उसके नतीजे उनके लिए विनाशकारी ही साबित होंगे।

आतंकवाद के "अदृश्य" शत्रु को तबाह करने के लिए अगर वे अफगानिस्तान, इराक, फिलिस्तीन या लेबनान में या दुनिया के किसी भी कोने में महाविनाश का कोई नया ताण्डव रचेंगे तो इसकी एक प्रतिक्रिया तो यह होगी कि नये-नये दर्जनों ओसामा बिन लादेनों के सैकड़ों आत्मघाती दस्ते पैदा हो जायेंगे और नतीजतन अमेरिकी जनता भी साम्राज्यवादी नीतियां बदलने के लिए अपने शासकों पर दबाव बढ़ा देगी। और इसकी दूसरी प्रतिक्रिया वह होगी जो बमों का "कालीन" बिछा देने के बाद वियतनाम में हुई थी। अगर 'आज़ादी की सुरक्षा' के नाम पर वे जनता के जनवादी अधिकारों के दमन के दीर्घकालिक रास्ते पर चलते हैं तो भी उन्हें दुनिया भर में लुटेरी सत्ताओं को हिला देने वाले जनप्रतिरोधों का सामना करना होगा। यूं भी आतंकवाद को कुचलने के नाम पर राज्यसत्ताएं सिर्फ यही कर सकती हैं कि व्यापक आबादी को दमन का निशाना बनायें और ऐसा करते हुए वे जनक्रान्ति को आमंत्रण देने का ही काम करती हैं। कहना न होगा कि आने वाले दिनों में जनता यही विकल्प चुनने जा रही है।

दुनिया भर में व्याप्त पूंजीवादी-साम्राज्यवादी लूट, अन्याय, असमानता और उसी की एक देन के रूप में आतंकवाद का समूल नाश तभी हो सकता है जब जनक्रान्तियों का विश्व्यापी सिलसिला साम्राज्यवाद- पूंजीवाद की समूची विश्व व्यवस्था का ही नाश कर दे और आज़ादी, बराबरी और सम्मान पर टिकी नयी विश्व व्यवस्था अस्तित्व में आये। हाल की घटनाएं यह बता रही हैं कि विश्व इतिहास एक संक्रमणकाल से गुजर रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि इसी संक्रमणकाल में भविष्य के रास्ते का नक्शा भी बनेगा और वित्तीय पूंजी के विनाशकारी विश्व वर्चस्व के विरुद्ध नयी जनक्रान्तियों की रूपरेखा तय होगी और अपरिहार्यत: दुनिया की जनता इसी विकल्प को चुनेगी।

...लेकिन, तब तक, जिन आततायी सत्ताओं ने अतीत की जनक्रान्तियों को खून की नदी में डुबो दिया और जनता के स्वप्नों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को राख की मोटी परत के नीचे दबा दिया, उन्हें आतंकवादी कहर का कोप भुगतना ही होगा। यह उन्हीं का पाप है। उन्हें ही इसे भुगतना है।

अमेरिकी शासक वर्ग की प्रभुसत्ता को नई सदी के पहले ही वर्ष में एक ऐसी चोट का सामना करना पड़ रहा है, जैसा उसने इतिहास में पहले कभी नहीं झेला। पर्ल हार्बर का विनाश भी इससे छोटा था और वह किसी आतंकवादी ग्रुप ने नहीं बल्कि एक अन्य साम्राज्यवादी शक्ति ने किया था। यह त्रासद है कि अमेरिकी शासक वर्ग के साथ ही अमेरिकी जनता को भी काफी विनाश झेलना पड़ रहा है। इस प्रक्रिया में, काफी महंगी कीमत चुकाकर वह भी इस सच्चाई को समझती जा रही है कि अमेरिकी सत्ताधारियों के नन्दन कानन की चारदीवारी के बाहर चारों ओर नफ़रत का कैसा दावानल दहक रहा है, और यह भी कि पिछली आधी सदी के दौरान, "अमेरिकी हितों" की रक्षा के नाम पर विभिन्न देशों में वे युद्ध, भुखमरी और तबाही का कितना रौरव नर्क रचते रहे हैं।

बहरहाल, ग़ौरतलब बात यह है कि इस विनाश के बाद अमेरिका के भीतर भी जनमत अमेरिकी हुकूमत की नीतियों को इसके लिए जिम्मेदार मान रहा है और अन्धराष्ट्रभक्ति की भावनाओं में बहने के बजाय उन नीतियों को बदलने की मांग करता दीख रहा है। इस रुझान में भविष्य के लिए साफ संकेत छिपे हैं।

3 अक्टूबर, 2001

विशेष सामग्री

(नौवीं किश्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 4

पार्टी की बुनियादी कार्य दिशा

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियों मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में नौवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

- सम्पादक

हमारे अन्दर धारा के विरुद्ध जाने की क्रांतिकारी स्पिरिट होनी चाहिए

लगातार पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को लागू करते रहने के लिए, हमारे पास धारा के विरुद्ध जाने की क्रांतिकारी स्पिरिट जरूर होनी चाहिए। धारा के विरुद्ध जाने से तात्पर्य है मार्क्सवाद पर दृढ़तापूर्वक टिके रहना और अवसरवाद, संशोधनवाद और सभी दोषपूर्ण प्रवृत्तियों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष करना। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, इसका अर्थ है साम्राज्यवादी, संशोधनवादी और सभी प्रतिक्रियावादी प्रति-धाराओं के विरुद्ध संघर्ष करना। आंतरिक तौर पर, इसका अर्थ है सभी अवसरवादी लाइनों, सभी गैर-सर्वहारा वैचारिक प्रवृत्तियों का विरोध करना। पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा का लगातार दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए, हम निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी ताकतों के सभी हमलों का सामना करेंगे, पार्टी के अंदर भी और बाहर भी, देश के अन्दर भी और बाहर भी। इसीलिए हमें हर परिस्थिति में साफ दिमाग बने रहना चाहिए, लगातार वर्ग-संघर्ष में प्रभावी स्थिति की छानबीन और विश्लेषण करते रहना चाहिए, और यह स्पष्ट रूप से आत्मसात कर लेना चाहिए कि एक प्रवृत्ति दूसरी को ढंक लेती है, हमें धारा के विरुद्ध जाने की सर्वहारा स्पिरिट का प्रदर्शन करना चाहिए, अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा को दृढ़ता के साथ लागू करना चाहिए, और उन सभी दोषपूर्ण कार्यदिशाओं और प्रवृत्तियों से संघर्ष करना चाहिए जो समाजवादी दिशा के विपरीत हैं और जिनसे क्रांति को खतरा है।

अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं कि "धारा के विरुद्ध जाना मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त है।" मार्क्सवाद-लेनिनवाद मूलतः आलोचनात्मक और क्रांतिकारी है। सर्वहारा वर्ग क्रांतिकारी वर्ग है, महानतम वर्ग है। यह बुर्जुआ वर्ग के दमन और वर्चस्व को खत्म करना चाहता है, कम्युनिस्ट समाज की स्थापना के लिए पुरानी दुनिया के पतन को तेज करना चाहता है, और यह क्रान्ति स्वयं ही एक गौरवपूर्ण कार्य है जो धारा के विरुद्ध जाती है। सर्वहारा क्रांति के सभी शिक्षक धारा के विरुद्ध जाने में आदर्श बने। अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में मार्क्स और एंगेल्स ने कभी उन लोगों के खिलाफ लड़ना नहीं छोड़ा जिन्होंने तथाकथित "समाजवाद" का झण्डा उठा रखा था, और उन्होंने सभी प्रतिक्रियावादी विचारधाराओं की सभी प्रवृत्तियों और उसके सभी प्रतिनिधियों का सामना किया, और निडर सर्वहाराओं के वीरतापूर्ण तेवर के साथ, ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए संघर्ष किया। लेनिन और स्तालिन का हर ब्राण्ड के अवसरवाद और उसके नुमाइन्दों के खिलाफ संघर्ष भी धारा के विरुद्ध जाने का एक आदर्श है। अध्यक्ष माओ हमारी पार्टी के प्रतिनिधि और शिक्षक हैं और उन्होंने इन चीजों को धारा के विरुद्ध जाने की हिम्मत करने की स्पिरिट से और सही कार्यदिशा को दृढ़ता के साथ लागू करने से जोड़ा है। अध्यक्ष माओ ने न सिर्फ – पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष में– विचारधारा की सभी दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवादी प्रवृत्तियों का पूरी ऊर्जा और एक सर्वहारा क्रांतिकारी के साहस के साथ सामना किया, और कई बार अवसरवादी कार्यदिशाओं को पराजित किया, बल्कि, वे अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में आधुनिक संशोधनवाद की प्रतिधारा, जिसका सोवियत संशोधनवादी प्रतिनिधित्व करते हैं, के खिलाफ भी डटे रहे हैं। उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद की रक्षा और विकास किया और हमारे सामने धारा के विरुद्ध जाने का क्या अर्थ है, इसकी एक शानदार मिसाल पेश की। इस तरह से यह धारा के विरुद्ध जाने की ही प्रक्रिया थी जिसमें मार्क्सवाद-लेनिनवाद पैदा और विकसित हुआ। इसी तरह धारा के विरुद्ध जाने के दौरान ही सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में क्रांति का उद्देश्य लगातार आगे बढ़ता जाता है।

धारा के विरुद्ध जाने के लिए सर्वप्रथम ऐसा करने का साहस करना चाहिए। जब कटघरे में कार्यदिशा हो, जब पूरी परिस्थिति दांव पर हो, एक असली कम्युनिस्ट को सामान्य हित में कार्य करना चाहिए और बिना इस बात से डरे कि उसे उसके पद से हटा दिया जाएगा, पार्टी से निकाल दिया जायेगा, जेल में डाल दिया जयेगा, गोली मार दी जाएगी या अलग-थलग कर दिया जाएगा, धारा के विरुद्ध जाने का साहस करना चाहिए। कम्युनिस्ट चीन और विश्व के विशाल बहुमत के हितों के लिए संघर्ष करते हैं। पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को दृढ़ता से मानते रहने के लिए, उन्हें सही रास्ते पर दृढ़ रहने का साहस करना ही चाहिए, उन्हें तूफानों का साहसपूर्वक सामना करना चाहिए, सामान्य हितों के लिए पूर्णतः समर्पित होने के लिए और वीरतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए। स्वार्थपूर्ण प्रोत्साहन से पूर्ण मुक्ति ही एक व्यक्ति को निडर होने के काबिल बनाती है। जब एक गलत प्रवृत्ति एक धारा के समान हमारी ओर लहराती हुई बढ़ती है तब सर्वहारा वर्ग की अवस्थिति पर टिके रहना और इस दोषपूर्ण प्रवृत्ति से समझौताविहीन संघर्ष केवल सर्वहारा क्रांतिकारी साहस के साथ और सभी भयों से मुक्त मन से ही संभव है। अगर कोई व्यक्ति स्वार्थपूर्ण तरीके से व्यवहार करता है, हमेशा अपने निजी हितों के बारे में सोचता है, हमेशा यह नापता-जोखता है कि उसे क्या हानि हो सकती है या उसे क्या लाभ हो सकता है, अगर वह किसी चीज़ और हर चीज़ से डरता है, तो वह दोषपूर्ण प्रवृत्ति का सामना करने और उसका विरोध करने, या अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रांतिकारी कार्यदिशा का बचाव करने के काबिल नहीं है। धारा के विरुद्ध जाने की इस क्रांतिकारी स्पिरिट का विकास करने के लिए हमारी पार्टी के हर सदस्य को महान क्रांतिकारी शिक्षकों द्वारा पेश की गयी धारा के विरुद्ध जाने की मिसालों से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

धारा के विरुद्ध जाने के लिए, सवाल सिर्फ यह नहीं है कि एक व्यक्ति ऐसा करने की हिम्मत जुटा पाता है या नहीं, बल्कि यह भी है कि वह दोषपूर्ण प्रवृत्ति को पहचानने के काबिल है या नहीं। समाजवाद के युग में वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों का संघर्ष बेहद जटिल होता है, और जब ऐसा होता है कि एक प्रवृत्ति दूसरे को ढंक देती है, तो बहुत से कामरेड पर्याप्त रूप से सावधान नहीं होते। ठीक उसी समय वे लोग जो योजनाएं बना रहे होते हैं, षडयंत्र रच रहे होते हैं, सोच-समझकर गलत तस्वीरें पेश करने की कोशिशें करते हैं और, अपने स्वार्थ के लिए कठिन समय का लाभ उठाते हैं, और हमारे लिए उन्हें पहचान पाना और मुश्किल बना देते हैं। फिर भी, दोषपूर्ण कार्यदिशाएं और प्रवृत्तियों का वस्तुगत अस्तित्व होता है और, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से, सारी चीजें जो वस्तुगत हैं, वे जानी जा सकती हैं। अगर हमारी आंखों की दृष्टि पर्याप्त तीक्ष्ण नहीं है तो हमें मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा के सूक्ष्मदर्शी और टेलीस्कोप का इस्तेमाल करना होगा। अगर हम मेहनत के साथ मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्लासिकीय रचनाएं और अध्यक्ष माओ की रचनाएं पढ़ें, अगर हम व्यावहारिक संघर्षों में सक्रिय भागीदारी करें, और अगर हम सचेतन तौर पर अपने विश्व-दृष्टिकोण को बदलें, तो हम धीरे-धीरे सच्चे मार्क्सवाद और नकली मार्क्सवाद, और सही कार्यदिशा और गलत कार्यदिशा के बीच भेद करने की अपनी क्षमता को बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार शस्त्र सज्जित होकर, एक दोषपूर्ण प्रवृत्ति के आने पर हम इस काबिल होंगे कि स्पष्ट राय और विचार रख सकें, हम खुद को बाहरी रूप से बेवकूफ नहीं बनने देंगे और हम इसके खिलाफ साहसपूर्वक संघर्ष करने के काबिल होंगे।

धारा के विरुद्ध जाने के लिए, सिर्फ इतना काफी नहीं कि हम सिद्धान्तनिष्ठ हों, बल्कि यह भी जरूरी है कि हम राजनीतिक सिद्धान्तों को सही तरीके से लागू करें, सही कार्यदिशा और गलत कार्यदिशा के बीच भेद करें, और सर्वाधिक लोगों को एकजुट करने की ओर ध्यान दें। समाजवाद के युग में वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों का संघर्ष अत्यन्त जटिल होता है – हमारे और शत्रु के बीच के अंतरविरोधों को जनता के बीच के अंतरविरोधों के साथ गड्डमड्ड करना आसान होता है। और एक ही दृष्टि में सब कुछ देखना संभव नहीं होता है। धारा के विरुद्ध जाने के लिए यह भी ज़रूरी है कि हम एक सही नीति लागू करें और हम विभिन्न प्रकार के अंतरविरोधों के बीच भेद करें। धारा के विरुद्ध जाने के लिए हमें पार्टी के अनुशासन का भी सम्मान करना चाहिए। धारा के विरुद्ध जाना और पार्टी अनुशासन का सम्मान करना एक-दूसरे से अलग नहीं है। दोनों का लक्ष्य पार्टी की कार्यदिशा के सहीपन की रक्षा करना है। इसीलिए जब हम धारा के विरुद्ध जाने की स्पिरिट का प्रदर्शन करते हैं, तो हमें सर्वहारा अनुशासन का भी सम्मान करना चाहिए, ताकि पार्टी की सही राजनीतिक कार्यदिशा और सिद्धान्तों को पूर्णतः लागू करने की गारण्टी हो।

क्रमशः

...देशों के आंतरिक राजनीतिक संकटों की ओर से मेहनतकश जनता का ध्यान हटाना; मज़दूरों की एकता को भंग करना, उन्हें राष्ट्रवाद द्वारा बेवकूफ बनाना तथा सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कमजोर करने के उद्देश्य से उसके हरावल दस्ते का नामोनिशान मिटा देना – यही वर्तमान युद्ध का एकमात्र असली अन्तर्य, महत्व और अर्थ है।

लेनिन, संकलित रचनाएं
खण्ड 26, पृष्ठ 15-23

राहुल फाउण्डेशन से शीघ्र प्रकाश्य

तीन बेहद जरूरी किताबें :-

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास, पृष्ठ-400

माओ त्से-तुङ. : कला साहित्य, विषयक एक भाषण और पांच निबंध पृष्ठ-48

माओ त्से-तुङ. : दर्शन विषयक पांच निबन्ध पृष्ठ- 124

प्रतियों के लिए सम्पर्क करें :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020
email :
janchetna@rediffmail.com

रुद्रपुर में बंगाली समुदाय का प्रदर्शन

अपने संघर्षों को व्यापक आबादी के संघर्षों से जोड़ना होगा!

बिगुल संवाददाता

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। भय और असुरक्षा के बीच जी रहा तराई का बंगाली समुदाय अन्ततः जागा, संगठित हुआ और अपने विशाल प्रदर्शन से उसने अपनी शक्ति का अहसास दिलाया। विगत 20 सितम्बर को ऊधमसिंह नगर के जिला मुख्यालय रुद्रपुर में उमड़ी एक लाख से भी ज्यादा बंगाली आबादी ने जिला प्रशासन और सरकार को चेता दिया कि अब और ज्यादा अन्याय बर्दाश्त नहीं होगा। इस समुदाय की मुख्यतः तीन मांगें थीं – नागरिकता का स्थायी प्रमाणपत्र देना, अनुसूचित जाति का आरक्षण कोटा व देश का नागरिक घोषित करना।

दरअसल, **लम्बे समय से दबाये-कुचले गये यहां के अप्रवासी बंगाली समुदाय के लिए अब अस्तित्व का संकट पैदा हो गया था। जैसे-तैसे गुजर-बसर कर रही इस आबादी पर जब नागरिकता का ही सवाल उठ गया तो फिर उनके बर्दाश्त की हद पार होने लगी।** ठीक ऐसे वक्त में छात्रों-नौजवानों और मेहनतकशों ने पहलकदमी ली और संघर्ष का ऐलान करते हुए जनजागरण अभियान शुरू कर दिया। बंगाली बहुल क्षेत्रों – शक्तिफार्म, दिनेशपुर व रुद्रपुर में बैठकों-सभाओं-प्रदर्शनों का क्रम शुरू हो गया। फिर एक लाख से भी ज्यादा आबादी का यह प्रदर्शन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस प्रदर्शन में सबसे बड़ी बात यह रही कि उन्होंने सभी राजनीतिक दलों को आन्दोलन और मंच से दूर रखा और 29 सितम्बर को भाजपा के प्रदेशव्यापी किसान रैली का उन्होंने बहिष्कार किया।

नवगठित 'उत्तरांचल छात्र-युवा संगठन' व 'बंगाली कल्याण समिति' के बैनर तले सम्पन्न इस प्रदर्शन में बूढ़ों, बच्चों, महिलाओं सहित सभी ने शिरकत किया। जिसमें महिलाओं ने सबसे बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की। यहां तक कि वृद्ध महिलाओं ने भी आंदोलन में बराबरी से भाग लिया। सुबह से ही गांधी पार्क में लोगों के आने का सिलसिला शुरू हुआ। शहर के अंदर आने वाले हर मार्ग पर बंगाली महिलाएं व पुरुष हाथों में बैनर लिए नारेबाजी कर रहे थे। चिलचिलाती धूप में गांधी पार्क से दो किलोमीटर दूर जिलाधिकारी कार्यालय तक रैली का तांता लगा रहा। आंदोलन के समर्थन में नगर के बाज़ार व शिक्षण संस्थाएं बन्द रहीं। प्रमुख राजमार्गों पर चक्का जाम जैसी स्थिति बनी रही। इस प्रदर्शन में ऊधमसिंह नगर के विभिन्न इलाकों के अलावा पीलीभीत, रामपुर व बिजनौर जिलों से भी बंगाली आबादी एकत्रित हुई थी। सभी लोग अपना लंच पैकेट व पानी साथ लेकर आये थे। आयोजकों ने प्राथमिक उपचार तक की व्यवस्था कर रखी थी।

यहां के बंगाली समुदाय के भीतर असंतोष का लावा लम्बे समय से सुलग रहा था। इस आबादी का बहुलांश ग़रीबी और ज़िल्लत की ज़िन्दगी जीता रहा है। वह निकृष्टतम कोटि की दिहाड़ी मज़दूरी करता रहा है। शुरू से ही चुनावी राजनीतिक पार्टियां उनका इस्तेमाल करती रहीं और उन्हें अप्रवासी होने का अहसास करवाती रहीं।

इधर नया उत्तरांचल राज्य बनने के बाद कालेजों में प्रवेश व नौकरियों के लिए जब स्थायी निवास प्रमाण पत्र बनवाने का सिलसिला शुरू हुआ। तो लम्बे समय से रह रहे यहां के बंगाली छात्र-युवा जब प्रमाण पत्र लेने पहुंचे तो उन्हें प्रमाण पत्र तो मिला लेकिन प्रोफार्मा में 'भारत के नागरिक हैं' कालम काट दिया गया। इस अन्यायपूर्ण दोगली नीति के खिलाफ युवाओं का आक्रोश फट पड़ा और उन्होंने संघर्ष का ऐलान करते हुए एकजुटता बनानी शुरू कर दी।

ज्ञातव्य है कि नैनीताल जिले के इस तराई बेल्ट में भी (वर्तमान में ऊधमसिंह नगर) भारत-पाक बंटवारे के बाद पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान से आए अप्रवासी आबादी को बसाना प्रारम्भ हुआ था। यहां बसे बंगाली समुदाय के लोग मुख्यतः पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से किश्तों में आते रहे हैं। पहले खेप में सन 1952 में इस समुदाय के लोग यहां आकर बसे। रिश्तेदारी-नातेदारी के कारण लोग बाद तक यहां आकर बसते रहे। और मेहनत-मज़दूरी करते हुए स्थानीय समाज का हिस्सा बनते रहे।

एक समय में बीहड़, जंगली और दलदली इस इलाके को, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पहाड़ व देश के अन्य हिस्सों से आयी मेहनतकश आबादी की ही तरह अप्रवासी बंगाली-पंजाबी समुदाय ने भी अपने खून-पसीने से रहने योग्य और कृषि योग्य बनाया। 'बीमारियों व आपदाओं को झेलते हुए उन्होंने यहां बस्तियां बसायीं। इनमें से बहुलांश खुद तो ज़िल्लत की ज़िन्दगी जीते रहे लेकिन इस क्षेत्र को उत्तरांचल का सबसे सम्पन्न क्षेत्र बना दिया। यह सम्पन्नता मुट्ठी भर थैलीशाहों की जागीरदारी बनकर रह गयी। यहां की मेहनतकश बंगाली जनता ग़रीबी व बेकारी की मार तो झेल ही रही थी, अब नागरिकता से भी वंचित करने का प्रश्न उनके अस्तित्व का प्रश्न बन गया।

मजेदार बात यह है कि सरकार जिसे भारतीय नागरिक नहीं मान रही है उस आबादी के पास राशन कार्ड भी हैं, वोटर लिस्ट में नाम है और भारत की जनसंख्या सूची में भी इनकी गिनती है। तो सवाल उठता है कि ये नागरिक क्यों नहीं हैं? केन्द्र सरकार 25 मार्च 1971 के बाद आने वाली बंगाली आबादी को घुसपैठिया मान रही है – आखिर क्यों? यही नहीं, स्थानीय भाजपा विधायक इसे साम्प्रदायिक रंग देते हुए एक और घृणित बंटवारा करते हैं और बड़े ही हेठी से बोलते हैं कि हिन्दू बंगालियों को नहीं मुस्लिम बंगालियों को चिन्हित किया जाये और उन्हें बाहर किया जाये। एक और घृणित बंटवारा!

इन चुनावी मदारियों की लाख कोशिशों के बावजूद उनसे पीछा छुड़ाकर ही, 20 सितम्बर को उक्त शानदार रैली सम्पन्न हो सकी और सरकार को उनकी मांगें मानने के लिए बाध्य होना पड़ा। हालांकि इसमें भी दांव-पेंच है। उत्तरांचल के मुख्यमंत्री नित्यानन्द स्वामी ने घोषणा की कि राज्य के बंगाली समुदाय को स्थायी प्रमाण पत्र भी मिलेगा और नागरिकता का अधिकार भी। साथ ही, इस समुदाय की दलित आबादी को अनुसूचित जाति संवर्ग में रखने के लिए राज्य सरकार केन्द्र के पास सुझाव भेजेगी। लेकिन मुख्यमंत्री के इस बयान पर भी गौर फरमाना ज़रूरी है। मुख्यमंत्री ने 29 सितम्बर को भाजपा किसान रैली के दौरान पत्रकार वार्ता में कहा कि 'बंगाली भारतीय नागरिक हैं उन्हें **अधिकार देने पर सरकार विचार करेगी।** ...अन्य बंगालियों के बारे में यह विचार हो रहा है कि **उन्हें भारतीय नागरिकता मिली है अथवा नहीं।**' सरकार अधिकार देने व नागरिकता देने पर विचार करेगी। यह बयान ही सरकारी मंशा उजागर करने के लिए पर्याप्त है। बंगाली समुदाय को इस धूर्तता को भी समझना होगा।

बहरहाल, 'उत्तरांचल बंगाली छात्र व युवा संगठन' के पहल पर मेहनतकश बंगाली समुदाय ने अपने अधिकार के जिस संघर्ष की शुरुआत की है, वह संघर्ष निश्चित ही जारी रहेगा, अंतिम विजय की मंजिल तक जारी रहेगा, यही उम्मीद की जानी चाहिए। वे चुनावी मदारियों और अपने भीतर भटकाव पैदा करने वाली ताकतों से संघर्ष करेंगे, ऐसा उनका विश्वास है। उन्हें अपने इन बुनियादी अधिकार की लड़ाई के साथ ही ज़िल्लत की ज़िन्दगी से भी मुक्ति का संघर्ष छेड़ना होगा।

संघर्षरत बंगाली समुदाय को शिक्षा और रोजगार के बुनियादी अधिकारों की लड़ाई को तथा शोषण-उत्पीड़न-असमानता के सारे बंधनों को काटने के संघर्ष को भी अपने संघर्ष का हिस्सा बनाना होगा। उन्हें अपने संघर्षों के साथ क्षेत्र की अन्य मेहनतकश आबादी को भी जोड़ना होगा। इसके साथ ही क्षेत्र की अन्य मेहनतकश आबादी का भी यह दायित्व बनता है कि वे बंगाली मेहनती जनता के संघर्षों में कंधे से कंधा मिलाकर चलें – क्योंकि सभी मेहनतकश एक हैं। जाति-क्षेत्र-धर्म का बंटवारा तो सत्ताधारियों का, **लुटेरों** का हथियार है, हमें बांटकर कमजोर करने की साजिश है। इससे सावधान रहना होगा।

एक शानदार प्रदर्शन, बेजोड़ एकता का प्रदर्शन सम्पन्न हो गया, लेकिन संघर्ष अभी जारी है। अब इस ताप को बरकरार रखना और अपने संघर्षों को अगली मंजिल में पहुंचाना जिम्मेदार नेतृत्व का काम है।

कैलिफोर्निया के बिजली संकट के आइने में

देश के भीतर बिजली के निजीकरण की तस्वीर

(कार्यालय प्रतिनिधि)

लखनऊ। एनरॉन के तजुर्बे के बाद भी देश के हुक्मरान बिजली के निजीकरण की राह पर चलने से पीछे नहीं हटने वाले हैं। अब जब "सुधारों" के दूसरे चरण में बुलडोजर की स्टीयरिंग ह्वील खुद प्रधानमंत्री महोदय ने थाम ली है और काफी जोशोखरोश के साथ इन "सुधारों" के लिए जमीन समतल बनाने का इरादा जाहिर कर रहे हैं तो इससे पीछे हटने का सवाल ही नहीं उठता। ऊर्जा क्षेत्र का "सुधार" उनकी प्राथमिकता में काफी ऊपर है, यह बार-बार दुहरा भी रहे हैं। ऐसे में, देश की ग़रीब जनता को किस तरह बिजली मिलेगी यह बहुत साफ होता जा रहा है। जब अमेरिका जैसे देश में बिजली के निजीकरण ने आम उपभोक्ताओं के लिए तबाही मचा रखी है तो फिर भारत जैसे देश का क्या होगा यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है। एनरॉन के अनुभव के बाद आइये, अमेरिका के कैलिफोर्निया शहर में बिजली के निजीकरण के अनुभव से यह देखें कि बिजली के निजीकरण से देश की आम मेहनतकश जनता के लिए किस तरह की परेशानियां दरवाजे खटखटा रही हैं।

कैलिफोर्निया राज्य असेम्बली द्वारा कैलिफोर्निया की सरकारी बिजली कम्पनियों के निजीकरण का विधेयक 1996 में आम राज्य से पारित किया गया था। इस विधेयक में वायदा किया गया था कि 2002 तक बिजली दरों में 20 प्रतिशत तक कटौती हो जायेगी। इन चार वर्षों तक उपभोक्ताओं से यह अपील की गयी कि वे निजी वितरण कम्पनियों के बकाया को चुकता कर दें जिससे निवेश की कमी से जूझ रही इन कम्पनियों को उबार कर बेहतर सेवा उपलब्ध कराने लायक बनाया जा सके।

उपभोक्ताओं ने इस अपील को मानते हुए अपने बकाये चुकता कर दिये जिससे लगभग 17 अरब डालर इन कम्पनियों को मिले। इन वितरण कम्पनियों से भी कहा गया था कि वे अपने बिजली उत्पादन सुविधाओं को (कुछ जलविद्युत एवं नाभिकीय उत्पादन इकाइयों को छोड़कर) अन्य बड़े निजी उत्पादकों को बेच दें, जिसे बेचकर भी इन्होंने बड़ी रकमें इकट्ठा कीं। लेकिन इसके बावजूद ये कम्पनियां उपभोक्ताओं को पर्याप्त मात्रा में बिजली उपलब्ध कराने में नाकाम साबित हुईं और एक समय ऐसा आया जब समूचा कैलिफोर्निया शहर अंधेरे में डूब गया। हुआ यह कि पिछले वर्ष बिजली उत्पादन में एकाधिकार रखने वाली ग्यारह निजी कम्पनियों ने राज्य के लगभग एक चौथाई उत्पादन इकाइयों को "रखरखाव और मरम्मत" के नाम पर उप कर दिया। उन्होंने बहाना यह बनाया कि बिजली मांग बढ़ गयी है और इसकी तुलना में उत्पादन कम हो पा रहा है। जबकि सच्चाई यह थी कि बिजली की मांग 2000 में भी उतनी ही बनी रही थी, जितनी 1999 में थी। असल कारण यह था कि जिन सरकारी प्लांटों को उन्होंने अपने हाथ में लिया था उनके आधुनिकीकरण के लिए ज़रूरी निवेश करने से वे कतरा रहे थे।

उधर बिजली की सेवाएं उपलब्ध कराने वाली मुख्य निजी कम्पनियों – 'पेसिफिक गैस', 'इलेक्ट्रिक कम्पनी' और 'सदर्न कैलिफोर्निया एडिसन' इन निजी उत्पादक कम्पनियों की महंगी बिजली खरीदने में हाथ फैला दिये। निजी उत्पादकों ने, जिनसे ये वितरण कम्पनियां बिजली खरीदती थीं बिजली के थोक मूल्य में 4000 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी कर दी थी। नतीजा यह हुआ कि वितरण कम्पनियां बिजली खरीद का भुगतान करने में पिछड़ने लगीं। उत्पादकों ने बिना भुगतान किये बिजली देने से मना कर दिया। इससे वितरण कम्पनियां उपभोक्ताओं को आवश्यक बिजली देने में नाकाम होने लगीं। पहले सीमित बिजली कटौती शुरू हुई और धीरे-धीरे यह आम बात बन गयी। इस साल जनवरी माह में तो एक समय ऐसा आया जब समूचा कैलिफोर्निया शहर अंधेरे में डूब गया।

अमेरिका जैसे देश के नागरिकों को भी, जो बिजली कटौती या बिजली के संकट जैसी चीज़ को तीसरी दुनिया के देशों की समस्या मानते थे, निजीकरण ने बता दिया है मुनाफाखोरी की हवस सिर्फ तीसरी दुनिया के देशों की जनता पर ही कहर बरपा नहीं कर रही है वरन उनकी ज़िन्दगी की मुसीबतों को भी बढ़ा सकती है। इससे निश्चय ही उनकी चेतना पर पड़े पर्दे उठ रहे हैं। सच है कि जब ज़िन्दगी में अंधेरे बढ़ते हैं तो लोग सच्चाइयों को ज्यादा साफ-साफ देखते हैं।

हमारे देश में भी बिजली के निजीकरण के शुरुआती अनुभवों को एनरॉन के जरिए जनता ने देख लिया है। अब वह भी सच्चाइयों को ज्यादा साफ-साफ देख पा रही है।

नारी सभा

स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता

लेनिन

कहने को तो पूंजीवादी जनवाद समानता और स्वतंत्रता का वचन देता है, परंतु अमल में किसी एक भी पूंजीवादी जनतंत्र ने, चाहे वह ज़्यादा से ज़्यादा उन्नत जनतंत्र ही क्यों न हो, मानव जाति की आधी स्त्री आबादी को न तो पुरुषों के साथ पूर्ण कानूनी समानता दी और न पुरुष की सरपरस्ती और उसके उत्पीड़न से ही मुक्ति दी।

पूंजीवादी जनवाद भड़कदार लफ्फाजी, शब्दाडंबर, लंबे-चौड़े वायदों और **स्वतंत्रता तथा समानता** के जोरदार नारों का जनवाद है, परंतु व्यवहारत: वह स्त्रियों, मेहनतकशों और शोषितों की स्वातंत्र्यहीनता और असमानता पर ही पर्दा डालता है।

सोवियत तथा समाजवादी जनवाद इन भड़कदार परंतु झूठे शब्दों को पूरी तरह ख़त्म कर देता है और "जनवादियों", जागीरदारों, पूंजीपतियों या उन अमीर किसानों के पाखंड के विरुद्ध निर्मम लड़ाई का ऐलान करता है, जो मजदूरों को भूखे रखकर और अपने फालतू अनाज की चोरबाजारी करके मुनाफ़ाखोरी करते हैं।

इस घृणित झूठ का ख़ात्मा होना चाहिए! उत्पीड़ित और उत्पीड़क, शोषित और शोषक में कोई "समानता" न तो हो सकती है, न है और न कभी होगी। जब तक स्त्रियां पुरुषों के कानूनी विशेषाधिकारों से मुक्त नहीं होतीं, मज़दूर पूंजी के जुए से मुक्त नहीं होते, जब तक मेहनतकश किसान पूंजीपतियों, जागीरदारों और व्यापारियों के जुए से मुक्त नहीं होते, तब तक कोई सच्ची "आज़ादी" न हो सकती है, न है और न होगी।

झूठों और मक्कारों, बुद्धिहीनों और अन्धों, पूंजीपतियों और उनके समर्थकों को आज़ादी, समानता और जनवाद की बातें करके जनता को धोखा देने दीजिए।

हम मज़दूरों और किसानों से कहते हैं – इन झूठे लोगों के नकाब फाड़ डालिये, इन अन्धों की आंखें खोल दीजिए। उनसे पूछिए:

– क्या पुरुषों के साथ स्त्रियों की समानता है?

– किस राष्ट्रीयता की किस राष्ट्रीयता के साथ समानता है?

– **किस वर्ग की किस वर्ग के साथ समानता है?**

– किस जुए, या किस वर्ग के जुए से आज़ादी? किस वर्ग के लिए आज़ादी?

जो इन सवालों को पेश किए बिना, इनको प्राथमिकता दिए बिना और इन्हें दबाने, छिपाने या कुंद करने के खिलाफ लड़े बिना राजनीति, जनवाद, आज़ादी, समता और समाजवाद के बारे में बातें करता है, वह मेहनतकशों का सबसे बड़ा दुश्मन है ,वह भेड़ की खाल में छिपा भेड़िया है, वह मज़दूरों और किसानों का कट्टर विरोधी है, जमींदारों, जारों और पूंजीपतियों का पिट्ठू है।

....

यह झूठ मुर्दाबाद! वे झूठे लोग मुर्दाबाद, जो **सबके लिए** समानता और आज़ादी की बातें करते हैं परंतु जिनके यहां स्त्रियों को दबाया जाता है, जिनके यहां उत्पीड़क वर्ग हैं, पूंजी और शेयरों का निजी स्वामित्व है, जिनके यहां फालतू अनाज रखने वाले धनी लोग भूखों को गुलाम बनाये रखते हैं। हमारा नारा यह नहीं है कि सबको आज़ादी मिले या सब समान हों, हमारा नारा है: ज़ालिमों और शोषकों के विरुद्ध **संघर्ष** किया जाए, जुल्म और शोषण की **संभावना ही मिटा दी जाये।**

उत्पीड़ित स्त्रियों को आज़ादी और समानता मिले!

मज़दूरों और मेहनतकश किसानों को आज़ादी और समानता मिले।

उत्पीड़िकों, पूंजीपतियों और कुलक-मुनाफाखोरों के विरुद्ध संघर्ष किया जाए।

यही हमारा जुझारू नारा है। यही हमारी सर्वहारा-वर्गीय सच्चाई है, पूंजी के विरुद्ध लड़ाई की सच्चाई है, जिसे हम पूंजी की दुनिया की आज़ादी और समानता के मुकाबले पेश करते हैं, **सबके लिए** आज़ादी और समानता की मीठी, आडम्बरपूर्ण पाखण्ड भरी लफ्फाजी के मुकाबले पेश करते हैं।

श्रमिक क्रान्ति निश्चय ही साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का नाश करेगी और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करेगी

– भगत सिंह

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है। और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मोहताज हैं दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया कराने वाला बुनकर अपने बच्चों का तन ढकने भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार, तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक-शोषक पूंजीपति ज़रा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलिया मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

सभ्यता का यह महल यदि समय रहते सम्भाला न गया तो शीघ्र ही चरमरा कर बैठ जाएगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी (कम्युनिस्ट) सिद्धांतों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व शांति के युद्ध का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। क्रांति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व संघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बंधनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

यह है हमारा आदर्श। और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है। लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन-व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आई तो क्रांति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की स्थापना होगी। यह अधिनायक तंत्र क्रांति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानव जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है।

(असेम्बली में बम फेंकने के बाद, 6 जून 1929 को दिल्ली के सेशन जज मिडिल्टन की अदालत में दिये गये बयान का एक हिस्सा)

उत्तरांचल में उद्योगों की दुर्दशा

कताई मिलों की बन्दी से हज़ारों परिवार भुखमरी के कगार पर

बिगुल संवाददाता

काशीपुर (ऊधमसिंह नगर)। उत्तरांचल राज्य में तमाम उद्योगों की बन्दी अथवा पलायन से स्थिति लगातार संकटपूर्ण होती जा रही है। राज्य बनने के पहले से ही बन्द पड़े कारखानों-मिलों-खाद्य गोदामों के पुन: चलने के कोई भी आसार नज़र नहीं आ रहे हैं। इससे हज़ारों मज़दूरों के सामने संकट की स्थिति पैदा हो गयी है। ऐसी ही त्रासदियों का शिकार हैं काशीपुर व जसपुर की कताई मिलें।

उत्तर प्रदेश राज्य वस्त्र निगम द्वारा संचालित काशीपुर व जसपुर की कताई मिलें लगभग साढ़े तीन वर्षों से बन्द पड़ी हैं। पिछले दो वर्ष से यहां के मज़दूरों को तनख्वाहें तक नहीं मिल पायी हैं जिससे पांच हज़ार से ज़्यादा परिवारों के सामने भुखमरी की स्थिति पैदा हो गयी है। दो वर्ष पूर्व इन मिलों को चलाने के लिए केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा आवंटित 12 करोड़ रुपये मिलों तक पहुंचने से पूर्व ही किसी 'ब्लैक होल' में समा चुकी हैं। दो राज्यों के बंटवारे से इन दोनों मिलों की स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गयी है। राज्य सरकार की इन्हें चलाने में कोई भी दिलचस्पी नहीं दिखाई दे रही है।

काशीपुर में स्थित निगम की यह कताई मिल 1977 से उत्पादन कर रही है। पांच हजार मज़दूरों के कठोर परिश्रम से उत्पादन करने वाला यह मिल एक समय में उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक उत्पादन करने वाला कारखाना था। लेकिन हालात बदलते गये, सरकारी मिलें, कारखाने घाटे में दिखलाई जाने लगीं, वस्त्र उद्योग तो पूरी तरह चौपट होने लगा। फिर तो कताई मिलों पर भी गाज गिरना ही था। मगहर से लेकर जसपुर तक, अविभाजित उत्तर प्रदेश की कताई मिलें बंद होती गयीं। घाटे के नाम पर फरवरी 1998 में काशीपुर की कताई मिल राज्य सरकार ने बंद कर दी। पुनरुद्धार और बंदी के दो पाटों के बीच यहां के मज़दूर लगातार पिस रहे हैं। तनख्वाह न मिलने से हज़ारों परिवारों के सामने संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी है।

हालात ये हैं कि एक समय खुशहाली, रौनक व ज़िन्दादिली के माहौल वाले मिल कालोनी परिसर में गंदगी व मायूसी का माहौल व्याप्त हो चुका है। उपेक्षित छोड़ दिये गये इस मज़दूर बस्ती में नालियों से पानी का निकास बन्द हो जाने से पानी फैलकर सड़ रहा है और मच्छरों व तरह-तरह की बीमारियों को जन्म दे रहा है। बरसात के पानी से लोगों का आना-जाना तक दूभर हो गया है। शौचालयों तक की स्थिति काफी खराब हो चुकी है। जब मिल ही नहीं चल रही है तो भला मिल प्रशासन इस पर ध्यान क्यों दे?

यहां मौजूद तमाम यूनियनों ने आज या तो संघर्ष का रास्ता छोड़ दिया है अथवा रुटीनी कवायद में लगी हैं। इंटक, बी.एम.एस., एच.एम.एस. जैसे महासंघों से सम्बद्ध यहां की यूनियनों का नेतृत्व आज खुद निराशा व पस्तहिम्मती की स्थिति में पड़ा हुआ है तो मजदूरों में क्या उत्साह का संचार करेगा? एटक (सी.पी.आई.) ने कुछ पहलकदमी ज़रूर ली थी, लेकिन वह भी रुटीनी कार्यवाही से अधिक कुछ नहीं हैं। संघर्ष की किसी दीर्घकालिक योजना का यहां पूर्णत: अभाव है। इलाके के अन्य संघर्षों से यहां के संघर्ष को जोड़ने की, एक साझे संघर्ष की योजना बनाने की बात तो काफी दूर की बात बन चुकी है। समग्रता की जगह पर स्टाफ ऐसोसिएशन अलग आन्दोलन चला रहा है। वह कताई मिल के सामने हाइवे पर धरना दे रहा है।

यहां की व्यापक मज़दूर आबादी अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए अपने परिवार के गुजारे के लिए विभिन्न रोजगारों की तलाश में लगा हुआ है। कोई खोमचा लगा रहा है, तो कोई रिक्शा आटो चलाकर अथवा आस-पास के अन्य कारखानों में मामूली दिहाड़ी पर खटकर अपना व अपने परिवार का जीवन-यापन कर रहा है। पांच हज़ार परिवार ऊहापोह की स्थिति में इन्हीं विकट परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहा है।

दरअसल इस त्रासदी के पीछे कई कारण हैं। **एक तो** भारी मुनाफे की हवस ने यहां के कम मुनाफे वाले परम्परागत कपड़ा उद्योगों को (मिलों से लेकर हथकरघा तक) लगभग तबाह कर दिया है। सूती धागों का स्थान ज़्यादा मुनाफेवाले पालिएस्टर धागों ने ले लिया है। सो कताई मिलों का भविष्य अंधकारमय होना ही था। **दूसरे**, निजी मुनाफे (देशी व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों दोनों के लिए) के लिए उपयुक्त माहौल और ज़मीन तैयार करने के लिए सरकार ने सरकारी/ सार्वजनिक उद्योगों से हाथ खींचने व उन्हें बेचने तथा बन्द करने का सिलसिला शुरू कर दिया। तरह-तरह के तिकड़मों से उन्हें घाटे में डालने की प्रक्रिया चलाई गयी। **तीसरे**, एक समय में कमजोर स्थिति वाले देश के पूंजीपति जनता के खून-पसीने को निचोड़कर आज वे उस स्थिति मे पहुंच चुके हैं कि अब सार्वजनिक उद्योगों को खरीद सकते हैं, निगल सकते हैं। **चौथे**, इन सरकारी निगमों-उद्योगों से जोंकों और पिस्सुओं की तरह चिपके बड़े-बड़े नौकरशाहों ने इन्हें निचोड़कर पूरी तरह खोखला बना दिया और मुनाफे को घाटों में बदल दिया। और इन सबका खामियाजा मज़दूरों के ही मत्थे मढ़ दिया गया।

इसके साथ ही, इन उद्योगों में

(पेज 10 पर जारी)

दुनिया के मुनाफाखोरों के लिए युद्ध सुनहरा मौका लेकर आते हैं

(पृष्ठ 3 से आगे)

कुवैत, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात। ये देश तेल के बदले में अमेरिका से हथियार खरीदते रहे और अमेरिका को अपने भुगतान सन्तुलन के संकट से उबरने में अच्छी खासी मदद मिली।

अन्य साम्राजयवादी लुटेरे भी पीछे नहीं

अमेरिका के अलावा अन्य साम्राज्यवादी लुटेरे भी युद्धों से होने वाली मुनाफाखोरी में पीछे नहीं हैं। इस लूट के माल के बंटवारे को लेकर उनमें आपस में कुत्ताघसीटी और दांवघात भी लगातार चलता रहता है। 1972 में सद्दाम हुसैन ने जिस पश्चिम देश का पहला दौरा किया वह फ्रांस था। फ्रांस को इराक द्वारा भारी माला में तेल बेचने का सौदा हुआ, जिसके बदले में फ्रांस सोवियत संघ के बाद इराक को हथियार बेचने वाला दूसरा सबसे बड़ा देश बन गया। 1976 में तत्कालीन फ्रांसीसी राष्ट्रपति शिराक ने सद्दाम हुसैन को एक नाभिकीय रियेक्टर उपलब्ध कराया। इराक-ईरान युद्ध के दौरान फ्रांस ने इराक को मिराज युद्धक विमानों, युद्धपोत भेदी मिसाइलें और सोवियत स्कड मिसाइलों की मारक क्षमता बढ़ाने की तकनीक और उपकरण लगातार मुहैया कराये। 1991 में इराक पर अमेरिकी हमले का फ्रांस द्वारा विरोध करने के पीछे मुख्यत: फ्रांस का आर्थिक हित ही काम कर रहा था। इराक के तेल मंत्री आमिर रशीद का यह बयान भी आया था: "फ्रांस और रूस जैसे वे मित्र देशों को, जिन्होंने हमारा समर्थन किया है, तेल पर प्रतिबन्धों के हटने के बाद जब पुनर्निर्माण के ठेके दिये जायेंगे, तो उन्हें प्राथमिकता दी जायेगी।"

युद्ध से पैदा हुए मलबों की सफाई से भी मुनाफा:

हथियारों के निर्माता पहले अपने उत्पाद बेचकर मुनाफा पैदा करते हैं फिर उससे उत्पन्न मलबे की सफाई से भी मुनाफा लूटते हैं। अमेरिकी सेना के लिए सुरंगें बनाने वाली एक कम्पनी सी.एम.एस. खाड़ी युद्ध के बाद युद्ध के मलबों की सफाई का धन्धा कर सालाना 16 अरब डालर का मुनाफा कमा रही है। 1991 में एक ब्रिटिश कम्पनी 'रायल आर्डनेंस' को कुवैत की बारूदी सुरंगों की सफाई के लिए 9 अरब डालर का ठेका मिला था। यही कम्पनी पहले बारूदी सुरंगें बिछाने का ठेका लेती थी।

शाही एक्सपोर्ट ग्रुप...

(पेज 4 से आगे)

सूची मांग पत्र दिया था, उस पर समझौता पत्र में सिर्फ यह लिखा गया कि "दोनों पक्ष श्रम कानूनों का पूर्णत: पालन करेंगे।" सिर्फ इन्हीं 'खोखले आश्वासनों' के बाद आन्दोलन वापस ले लिया। हालांकि नेतृत्व के रवैये से मजदूरों को संघर्ष के लिए कोई खास उत्साह भी नहीं मिल पा रहा था।

इस तरह नेतृत्व के विश्वासघात और आम मजदूरों में संघर्ष के अनुभव की कमी के कारण एक शानदार सम्भावनासम्पन्न आन्दोलन की भ्रूणहत्या हो गयी। लेकिन, इस संघर्ष से मजदूरों को जो अनुभव मिले हैं वे बेशकीमती हैं। यूं भी दुनिया भर के मजदूर आन्दोलनों का इतिहास यह रहा है कि मजदूर अपने संघर्षों की जीतों से ज़्यादा हारों से सीखते रहे हैं, अपने खून की कीमत देकर सबक हासिल करते रहते हैं। इसलिए यह बात पक्के तौर पर कही जा सकती है कि इस संघर्ष के अनुभव के बाद शाही एक्सपोर्ट के मजदूर आगामी संघर्षों में अधिक परिपक्व होकर उतरेंगे और ज़ालिम मालिकान की तमाम चालों को नाकाम कर जीत की ओर आगे बढ़ेंगे।

अन्त में, निचोड़ के तौर पर इस संघर्ष के दौरान मजदूरों को जो सबक मिले हैं उन्हें सहेजते-समेटते हुए चन्द बातें कहना ज़रूरी है:

●सबसे पहली बात जो मजदूरों को नहीं भूलनी चाहिए, यह कि शाही एक्सपोर्ट जैसे मालिकान कोई इक्का-दुक्का नहीं हैं। पूरे देश में तमाम निजी कारखानों के मालिकानों का रवैया इतना ही ज़ालिमाना है। इस ज़ालिम तबके के साथ स्थानीय पुलिस, प्रशासन ही नहीं वरन पूरी व्यवस्था – कोर्ट-कचहरी, सरकारें, सभी चुनावी पार्टियां खड़ी हैं। देश में आज़ादी के नाम पर इसी ज़ालिम तबके की हुकूमत है। इसलिए, आज इन कारखानेदारों-पूंजीपतियों का पूरा वर्ग एकजुट होकर मजदूरों के ऊपर हमले कर रहा है। इसलिए, मजदूरों को भी अपनी लड़ाई किसी एक कारखाने या यूनिट के स्तर पर अकेले-अकेले लड़ने के बजाय अपनी व्यापक एकजुटता बनानी होगी और समूचे मालिकों के वर्ग और उनकी समूची व्यवस्था के खिलाफ अपने संघर्षों की धार केन्द्रित करनी पड़ेगी। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए पहले कदम के रूप में एक ही मालिक की सभी कम्पनियों के मजदूर अपनी फौलादी एकजुटता बनायें फिर आगे बढ़ते हुए इलाकाई पैमाने पर (उदाहरण के लिए नोएडा के पैमाने पर) अपनी एकजुटता क़ायम करने की दिशा में आगे बढ़ें। यह प्रक्रिया अगर जगह-जगह शुरू हो गयी तो आगे बढ़ते हुए देशव्यापी एकजुटता की मंजिल में पहुंचना कठिन नहीं होगा।

●दूसरी अहम बात यह कि मजदूरों को अपने संघर्षों का नेतृत्व करने के लिए चुनावी पार्टियों से जुड़े धन्धेबाजों, दलालों और मदारियों का मुंह ताकना बन्द करना होगा और ईमानदार, जुझारू, समर्पित और समझदार मजदूर साथियों को आगे आकर नेतृत्व की कमान सम्भालनी होगी। कहने का मतलब यह कि मजदूरों के बीच से क्रान्तिकारी नेतृत्व तैयार करना होगा।

●मजदूर अपनी लड़ाई सिर्फ गुस्से या बगावती भावना के बूते नहीं लड़ सकते। उन्हें देश और दुनिया की आज की परिस्थितियों को समझना होगा, मजदूर आन्दोलन के इतिहास को जानना होगा और इससे सबक निकालते हुए आज के हालात में संघर्ष की सही दिशा, रणनीति और सूझबूझ भरी कार्यनीति तैयार करनी होगी।

अमरीकी आतंकवाद की चंद कारगुजारियां...

(पेज 3 से आगे)

हुये त्रिपोली शहर पर धुआंधार बमवर्षा की। निशाना थे गद्दाफी जो उस समय रेगिस्तान में एक तम्बू में सो रहे थे। वह तो बच गये लेकिन उनकी गोद ली हुई पन्द्रह महीने की बच्ची मारी गयी।

उपरोक्त प्रकरण अमरीकी आतंकवादियों द्वारा आयोजित अनेगिनत व्यक्तिगत हत्यारों से जुड़े हैं परन्तु उन सामूहिक, व्यापक पैमाने पर किये गये नरसंहारों के बारे में क्या कहा जाये जो संयुक्त राज्य अमरीका पिछले सौ सालों से आयोजित करता आया है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण 1890 के दशक का एक घिनौना नाटक है। प्रसिद्ध अंग्रेज पत्रकार पॉल हॉक की पुस्तक "द न्यूजपेपर गेम" के अनुसार 1890 के दशक में अमरीकी पूंजीवाद इजारेदारी की मंजिल में प्रवेश कर चुका था और विदेशी मंडियों और कच्चे माल की तलाश में नये इलाकों को तलाश रहा था तो उसके अखबारों की नजर क्यूबा पर टिक गयी। अखबारमालिकों के शिरोमणि विलियम रैन्डोल्फ हर्स्ट ने क्यूबा पर आक्रमण के बहाने की तलाश के लिये अपने वरिष्ठ संवाददाता को हवाना भेजा। रेमिंगटन ने हवाना से मालिक को तार भेजा 'पूरा अमन है यहां। कोई गड़बड़ नहीं। कोई युद्ध नहीं होने जा रहा। मैं लौट रहा हूं।' हर्स्ट ने झल्लाकर रेमिंगटन को संदेश भेजा: 'वहीं रुके रहो, तुम तस्वीरें मुहैया करो, युद्ध मैं मुहैया करूंगा।

कुछ ही समय बाद अमरीकी जलयान 'माइन' में विस्फोट हुआ और हर्स्ट के अखबार *न्यूयार्क जर्नल* को वांछित बहाना मिल गया। अमरीकी अखबारों में होड़ लग गयी देश को युद्ध के मैदान में झोंकने की। और इसके बाद 30 वर्षों तक क्यूबा ही नहीं पूरे कैरिबियन सागर क्षेत्र में अमरीकी सैनिक छा गये।

दूसरों की जमीन पर सैनिक उतारने के नये-नये नुस्खे ईजाद करने के सिलसिले की यह शुरुआत थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सीआईए ने एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमरीका के देशों में दर्जनों तख़्तापलट और हत्याकाण्ड आयोजित कराये। ईरान में राजशाही को हटाकर सत्ता में आये डाक्टर मुसद्दिक की लोकप्रिय सरकार ने अमरीकी तेल कम्पनियों का राष्ट्रीकरण करना शुरू किया तो उनकी बर्बरतापूर्वक हत्या कराकर शाह की जालिम सत्ता को दुबारा बैठाया गया। 1973 में चिली में सल्वाडोर अलेन्दे की पार्टी भारी बहुमत के साथ सत्ता में आयी और जैसे ही उसने कई समाजवादी कदम उठाने शुरू किये, अमरीका ने वहां तख़्तापलट करा दिया जिसमें ख़ुद अलेन्दे लड़ते हुये मारे गये। इस साजिश में सीआईए का भरपूर साथ पेप्सी कम्पनी ने दिया जिसकी भारी पूंजी वहां लगी हुई थी। निकारागुआ में तानाशाह सोमोजा को हटाकर बनी लोकप्रिय सरकार के खिलाफ बर्बर आतंकवादी हमले जारी रखने के लिये अमरीका बरसों तक कोण्ट्रा आतंकवादियों को अरबों डालर की मदद और हथियार देता रहा।

वियतनाम में अमरीकी फौजों ने जैसे बर्बर कत्लेआम किये उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। 1961 से 1973 तक अमरीकी विमानों ने पूरे हिन्दचीन-वियतनाम, कम्पूचिया, लाओस – को बमों से पाट दिया। इस कारपेट बॉम्बिंग (बमों का कालीन बिछा देने) से शहर, खेत, पहाड़, जंगल किसी को नहीं छोड़ा गया। 30 वर्ष बाद आज भी आये दिन खेत में हल चला रहा कोई किसान या पार्क में खेल रहा कोई बच्चा इन बमों का शिकार होता रहता है।

तीसरी दुनिया के ज़्यादातर देशों में अमरीका एक घृणित हमलावर के तौर पर देखा जाता है। जिससे बच्चा-बच्चा नफरत करता है। बहुत पहले अमेरिकी इतिहासकार विलियम मैन्सफील ने अपने देश के एक पादरी रेनविक सी कनेडी का हवाला देते हुये कहा था: "वह खड़ा है अमरीकी आधिपत्यवादी सेना का एक नमूना सिपाही – मोटा, जरूरत से ज़्यादा खाया-पिया, अलग-थलग, उदास, नज़र कम, समझदारी उससे भी कम, विजेता, जिसकी एक जेब में चाकलेट और दूसरी जेब में सिगरेट का पैकेट है –विजित को देने के लिये उसके पास बस यही है।"

शायद इसी कारण कोरिया युद्ध में हारकर लौटे अमरीका के "नेपोलियन बोनापार्ट" जनरल डगलस मैकार्थर ने 1960 के दशक के आरम्भ में तत्कालीन राष्ट्रपति जॉन एफ कनेडी से कहा था: "जो कोई भी अमरीकी सेना को एशिया में उतारना चाहता है, उसे अपने दिमाग की जांच करा लेनी चाहिए।" लेकिन ऐसी चेतावनियों को ताकत के नशे में चूर साम्राज्यवादी बार-बार नजरंदाज करते रहे हैं और बार-बार मुंहकी खाते रहे हैं। जॉर्ज बुश वैसे भी ख़ुद अमरीकी नजरों में अर्द्ध शिक्षित हैं, वे तो इस पर ध्यान नहीं ही देंगे। राष्ट्रपति चुनाव में हुई धांधली की कालिख धोने और दुनिया को अमरीका की ताकत का लोहा मनवाने के लिये वह आतुर हैं...।

व्यक्तिगत आतंकवाद और राजकीय आतंकवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पूंजी रूपी डाइन अग्नि नृत्य के लिये अपने पात्र तैयार करती है दूसरों को मारने के लिये। और कभी-कभी वे पात्र उल्टे मार कर बैठते हैं।

(लेखक कई अखबारों से जुड़े रहे वरिष्ठ पत्रकार और लेखक हैं)

कताई मिलों की बन्दी से...

(पेज 9 से आगे)

मौजूद ट्रेड यूनियन नेतृत्व ने मजदूरों को वेतन-बोनस-भत्तों और सुविधाओं की लड़ाई के चक्रव्यूह में ऐसा उलझाया कि मजदूर अपने राजनीतिक हक के लिए संघर्ष को भूल गया। हालात बिगड़ते गये, आन्दोलन कमजोर होता गया और मुनाफाखोर हावी होते गये। परिणाम सामने है। एक समय में अपनी ताकत के दम पर बहुत कुछ हासिल करने वाला मजदूर आज वेतन तक का मोहताज हो गया है। पांच हजार मजदूरों की ताकत एक बड़ी ताकत होती है – सही, सच्ची एवं परिपक्व नेतृत्व के साथ। लेकिन अवसरवादी व गद्दार नेतृत्व इस ताकत को बौना बना देती है।

आज, कताई मिल के मज़दूरों की लासदपूर्ण स्थिति को सही और वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने और संघर्ष की रणनीति बनाने की जरूरत है। एक तो यहां के मजदूरों को एक ईमानदार व कुशल नेतृत्व के साथ अपने आपको संगठित करना होगा, दलालों व अवसरवादियों की कांट-छांट करनी होगी। उन्हें पस्तहिम्मती व निराशा से उबरना होगा। दूसरे, इस बात को भी समझना होगा कि अकेले-अकेले, एक मिल या कारखाने की चौहद्दी में सिमटकर अब कोई भी आन्दोलन जीत पाना लगभग असंभव हो चुका है। इसलिए इलाकाई पैमाने पर व्यापक मजदूर आबादी के साथ एकता बनानी होगी और साझे संघर्ष की शुरुआत करनी होगी। इसके साथ ही, अपने ट्रेड से जुड़े अन्य मजदूरों – बानी कताई मजदूरों से लेकर कपड़ा मजदूरों तक से प्रदेश व देशव्यापी एकता की पहल लेनी होगी। और इस प्रक्रिया में अपने संघर्षों को लगातार निखारते हुए अपने खोये हुए हक को प्राप्त करना होगा और अपने अन्तिम मुक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

काशीपुर व जसपुर के कताई मिल मजदूरों के सामने जो अस्तित्व का संकट पैदा हुआ है वह पूरी मजदूर आबादी का संकट है। तो क्यों न 'मजदूर-मजदूर भाई-भाई' के नारे को सच में बदलने के लिए इलाके में मजदूर संयुक्त संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ें!

बीमा संशोधन बिल...

(पेज 5 से आगे)

प्रतीक्षा कर रहे हैं। और सरकार भी शेयर बाजार पर छाई मंदी से उबरने का इसे एक जरिया मान रही है।

उल्लेखनीय है कि बैंकों में दलालों के प्रवेश ने अरबों-खरबों रुपये का जो घिनौना खेल शुरू किया और घोटालों का जो खेल आगे बढ़ा उसने महाघोटालों के रूप में हर्षद मेहता और केतन पारिख को जन्म दिया है। जाहिरा तौर पर सट्टेबाजी, घपलों, घोटालों की कड़ी में बीमा सेक्टर भी अब जुड़ने जा रहा है। पूरी तरह परजीवी, आज के जुआड़ी पूंजीवादी दौर में यह होना ही था। आम जनता की गाढ़ी कमाई की नाजायज लूट के "जायज़" रास्ते खुलने ही हैं। फिर बीमा सेक्टर इससे अछूता भला कैसे रह सकता है।

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन

सोवियत समाजवादी क्रान्ति की तैयारी से लेकर बाद के दौर तक वहां उपस्थित रहकर युगान्तरकारी घटनाओं के साक्षी रहे अमेरिकी पत्रकार एल्बर्ट रीस विलियम्स की दो दुर्लभ कृतियां :

'रूसी क्रान्ति के दौरान' तथा **'लेनिन : व्यक्ति और उनके कार्य'** एक ही जिल्द में हिन्दी पाठकों के लिए विशेष रूप से

साथ ही रीस विलियम्स का परिचय

मूल्य : रु. 75/- (पेपर बैक) रु. 150/- (सजिल्द)

एल्बर्ट रीस विलियम्स की कृतियां क्रान्तिकारी दौर की घटनाओं में उनके असली नायक आम जन समुदाय के कारनामों और सोच को सामने लाती है तथा लेनिन के मानवीय, जीवन्त और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का प्रामाणिक प्रभावी चित्र प्रस्तुत करती है जिनके साथ उन्हें लम्बे समय तक रहने का अवसर मिला था।

प्राप्त करें : **जनचेतना**

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226 020

लेनिन के साथ दस महीने

(पिछले अंक से आगे)

8. लेनिन सदा खतरे के मुंह में

शीघ्र ही ऐसी घटना घटी, जिससे यह प्रतीत हुआ कि अब अगली भेंट का अवसर नहीं आयेगा। ज्योंही लेनिन को लिये हुए मोटरगाड़ी अश्वारोहण-पाठशाला के भवन से बाहर निकली, त्योंही तीन गोलियां उनकी कार के आर-पार हो गईं और एक गोली से लेनिन के साथ बैठे स्विट्ज़रलैण्ड के प्रतिनिधि प्लैटन* घायल हो गये। किसी हत्यारे ने बगल की गली के कोने से गोली चलाकर लेनिन की हत्या करने की कोशिश की, मगर वह विफल रहा।

बोल्शेविक नेताओं के जीवन के लिए सदा ही खतरा बना रहता था। ज़ाहिर है कि पूंजीवादी षडयंत्रकारियों का मुख्य लक्ष्य लेनिन को ख़त्म करना था। उनका कहना था कि उनके विनाश की योजना लेनिन के तेज दिमाग़ की उपज थी। काश कि गोली उस दिमाग़ को भेदकर निष्क्रिय बना दे! प्रतिक्रान्तिवादियों के घरों में प्रतिदिन बड़ी उत्सुकता के साथ यही प्रार्थना की जाती थी।

मास्को के एक ऐसे धनी परिवार में हम लोगों का बहुत स्वागत-सत्कार हुआ करता था। मेज पर गर्म चाय के साथ तरह-तरह के फल, बादाम, अनेक प्रकार के ज़कूसका (कलेवा) और बहुत-सी अन्य चीज़ें, जिन्हें आर्थर रैन्सम** "मिठाइयां" कहा करते थे और जिन पर वे टूट पड़ते थे, परोसी जाती थीं। युद्ध से यह परिवार मालामाल हो गया था। व्यवसाय की सभी शाखाओं में सट्टेबाजी करना, गुप्त रूप से सामान जर्मनी भेजना तथा मुनाफाखोरी में छोटी-बड़ी रक़में कमाना, यही इस परिवार का पेशा था। अब अचानक, न जाने कहां से बोल्शेविक नमूदार हो गये थे, जो यह बना-बनाया सारा सिलसिला ही बिगाड़ देना चाहते थे। वे युद्ध समाप्त करना चाहते थे। उन्हें समझाये भी तो कौन! वे वहशी और उन्मादी थे। वे सट्टेबाजी, मुनाफाखोरी और इसी प्रकार के प्रत्येक काम को समाप्त कर देना चाहते थे! बस, एक ही रास्ता था – उनका सफ़ाया। उन्हें फांसी के तख़्ते पर लटका दिया जाये, उन्हें गोली मार दी जाये! और यह काम शीर्षस्थ नेता लेनिन के साथ ही शुरू होना चाहिए!

मास्को के इसी उदीयमान युवा सट्टेबाज़ ने गंभीरता से मुझे सूचित किया कि "लेनिन का काम तमाम करने वाले व्यक्ति को मैं इसी क्षण दस लाख रूबल दे सकता हूं और ऐसे 19 व्यक्ति और हैं, जो इस नेक काम के लिए कल ही दस-दस लाख रूबल और दे देंगे।"

हमने अपने पांच परिचित बोल्शेविकों से पूछा कि क्या लेनिन को उस ख़तरे की जानकारी है, जिससे वे गुजर रहे हैं। उन्होंने कहा, "हां, उन्हें इसकी बिल्कुल जानकारी है। किन्तु उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं है। बात यह है कि वे अपनी चिन्ता तो करना जानते ही नहीं।" वास्तव में ऐसा ही था भी।

ख़तरों और मुसीबतों से भरे मार्ग पर वे धैर्यवान धरती-पुत्र की भांति स्थिर भाव से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहे। ऐसे संकटों में भी जब मनुष्यों के साहस एवं आत्मविश्वास शिथिल हो जाते हैं और भय से चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगती है, वे शान्त एवं अव्यग्र रहते थे। प्रतिक्रान्तिवादियों और साम्राज्यवादियों द्वारा लेनिन की हत्या के एक के बाद एक कई कुचक्र विफल रहे। किन्तु 1918 में अगस्त की अन्तिम तिथि को षडयंत्रकारियों को प्राय: सफलता मिल गई।

प्रधानमंत्री ने मिख़ेलसोन कारख़ाने के 15,000 मज़दूरों की सभा में अपना भाषण समाप्त किया। ज्योंही वे अपनी कार में बैठने जा रहे थे, त्योंही एक लड़की अपने हाथ में एक कागज़ लिए हुए उनकी ओर दौड़ी मानो वह प्रधानमंत्री को कोई अर्जी देना चाहती हो। वे इस कागज़ को लेने के लिए उसकी ओर मुड़े और उसी समय एक दूसरी स्त्री – फ़ेन्नी कप्लान – ने उन पर तीन गोलियां चलाईं, जिनमें से दो गोलियां उन्हें लगीं और वे सड़क की पटरी पर गिर पड़े। उन्हें तत्काल कार में लिटाकर क्रेमलिन पहुंचाया गया। गोलियों के घाव से बहुत ख़ून बह रहा था, फिर भी वे स्वयं सीढ़ियां चढ़ो उनके अनुमान के प्रतिकूल वे बहुत ही गंभीर रूप से घायल हुए थे। कई सप्ताह तक मृत्यु उनके सिरहाने खड़ी रही। सख़्त बीमारी का सामना करने के बाद जो शक्ति बच गई थी, वह उन्होंने देश भर में व्याप्त प्रतिशोध के ज्वर को शान्त करने में लगा दी।

जन-समुदाय में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी थी; लोगों को इस बात पर बेहद गुस्सा था कि जो व्यक्ति उनकी स्वतंत्रता और आकांक्षाओं का प्रतीक है, उस पर प्रतिक्रियावाद की काली शक्तियों ने प्रहार किया था। उन्होंने क्रोधोन्मत्त होकर पूंजीपतियों एवं ज़ारशाही के पोषकों पर कड़ी जवाबी चोट की।

कमिसारों की हत्याओं और लेनिन को मौत के घाट उतार देने का प्रयास करने के कारण अनेक पूंजीपतियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। लोगों में इतना प्रचंड क्रोध था कि यदि लेनिन ने लोगों से अपना गुस्सा शान्त करने की मार्मिक अपील न की होती, तो सैकड़ों और मृत्यु के घाट उतार दिये गये होते। यह कहना उपयुक्त होगा कि उन्माद के उस पूरे वातावरण में लेनिन ही सबसे अधिक शान्त और सुस्थिर बने रहे।

(क्रमश:)

एल्बर्ट रीस विलियम्स उन पांच अमेरिकी जनों में से एक थे जो अक्टूबर क्रान्ति के तूफानी दिनों के साक्षी थे। वे 1917 के वसंत में रूस पहुंचे। उस समय से लेकर अक्टूबर क्रान्ति तक, वे तूफान के साक्षी ही नहीं बल्कि भागीदार भी रहे। इस दौरान उन्होंने व्यापक जनता के शौर्य एवं सृजनशीलता के साथ ही बोल्शेविक योद्धाओं के जीवन को भी निकट से देखा। लम्बे समय तक वे लेनिन के साथ-साथ रहे। क्रान्ति के बाद जुलाई, 1918 तक उन्होंने दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी ताकतों से जूझती पहली सर्वहारा सत्ता के जीवन-संघर्ष को निकट से देखा।

स्वदेश लौटकर रीस विलियम्स ने दो किताबें लिखीं – 'लेनिन: व्यक्ति और उनके कार्य' तथा 'रूसी क्रान्ति के दौरान'। ये दोनों पुस्तकें एक जिल्द में 'अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन' नाम से राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी हैं।

हम रीस विलियम्स की पूर्वोक्त पहली पुस्तक का एक हिस्सा 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

– *संपादक*

*एफ. प्लैटन – स्विट्ज़रलैण्ड के एक वामपंथी समाजवादी, जो बाद में कम्युनिस्ट हो गये थे। 1905 में उन्होंने रीगा में क्रान्तिकारी कार्यों का संचालन किया था, रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। वे 1912 से 1918 तक स्विट्ज़रलैण्ड की समाजवादी पार्टी के मंत्री रहे। 1917 में उन्होंने स्विट्ज़रलैण्ड से रूस जाने के लिए लेनिन की यात्रा की व्यवस्था की थी। वे स्विट्ज़रलैण्ड की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापकों में से थे। **आर्थर रैन्सम – एक उदारपंथी ब्रिटिश समाचारपत्र के संवाददाता और 'सोवियत रूस में छ: सप्ताह' नामक पुस्तक के लेखक।

बंधुआ मजदूरी के बिकाऊ माल से अपनी दुकानें चमकाने में लगे...

(पेज 4 से आगे)

उद्योगों में भी मज़दूरों का क्रूर शोषण होता है। पथेरा ईंट पकाने वाले रेजा, कुली, मिस्त्री, गधों पर ईंट ढोने वाले आदि मेहनतकशों की मज़दूरी भी बस जिन्दा रखने भर होती है। और इनमें भी काम मिलना मुश्किल होता जा रहा है।

रोजगार की तलाश में गांवों से कस्बों-शहरों और महानगरों की ओर जाने वाले मज़दूरों की भारी तादाद के चलते वहां भी महीने भर दिहाड़ी मिलना दूभर हो गया है। देश भर के औद्योगिक क्षेत्रों में नर्क से भी बदतर हालात में जीते हुए करोड़ों मज़दूर 40-45 रुपये की दिहाड़ी पर 12 से 16 घण्टे तक कमरतोड़ मेहनत करने को मजबूर हैं। लगातार बढ़ती बेरोजगार मज़दूरों की भीड़ मालिकान को कम से कम मज़दूरी पर ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ने का मौका दे रही है।

यह है मुक्त बाजार व्यवस्था की बर्बर, अमानवीय दुनिया में बंधुआ मुक्ति जैसे कार्यक्रमों की असलियत। वैसे तो बंधुआ रखने वाले मालिक भी पुराने सामन्त नहीं पूंजीवादी कुलक या फार्मर बन चुके हैं लेकिन पूंजीवाद को आज मुक्त श्रम की जरूरत है ताकि श्रम बाजारों में बढ़ती भीड़ उसे सस्ती से सस्ती दरों पर श्रमशक्ति मुहैया कराये। आरम्भिक पूंजीवाद के दिनों में यूरोप में बाड़ाबन्दी जैसे कदमों से सामन्तों की अर्द्धदासता से भारी संख्या में श्रमशक्ति को मुक्त कराया गया था ताकि शहरों के उद्योगों में 18-18 घंटे खटने के लिए मज़दूर मुहैया हो सकें।

और बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। हर पूंजीवादी व्यवस्था को भग्न पैदा करने के लिए, अपनी असलियत पर पर्दा डालने के लिए और जनअसंतोष के दबाव को कम करते रहने वाले सेफ्टीवाल्व के रूप में काम करते रहने के लिए कुछ सुधारकर्मियों की जरूरत पड़ती ही रहती है। साम्राज्यवादियों के पैसे से चलने वाली स्वयंसेवी संस्थायें और सुधारवादी संगठन तथा सरकार के सुधारवादी कार्यक्रम यही करते हैं। यूनेस्को, यूनिसेफ और आई.एल.ओ. भी यही करते हैं। पूंजीवादी सरकारें भी "कल्याणकारी राज्य" के दायित्वों का पालन करते हुए यही करती हैं। स्वामी अग्निवेश और दूसरे बंधुआ मुक्ति वालों से हमारा यह सवाल है कि क्या उन्होंने मुक्त कराये गये मज़दूरों के हश्र के बारे में जानने की कोशिश की? क्या उन्होंने यह पता किया कि खुली बाजार व्यवस्था और आर्थिक नवउपनिवेशवादी नीतियों ने उन मज़दूरों को लूट और बर्बर शोषण के किस नये दुश्चक्र में धकेल दिया है? क्या उन्होंने बंधुआ मुक्ति के अपने कार्यक्रम को पूंजी की इस नई गुलामी का समूल नाश करने की दिशा में आगे बढ़ाने के बारे में सोचा? आखिर ये तमाम "मुक्तिदाता" और "उद्धारक" करोड़ों मेहनतकशों की लूट और शोषण के विरुद्ध उंगली भी क्यों नहीं उठाते? बंधुआ मज़दूरों को "मुक्त" करा कर अखबारी शोशा उछालने के बजाय वे अपनी ताकत का एक छोटा सा भी हिस्सा पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ लोगों को संगठित करने में क्यों नहीं खर्च करते?

बंधुआ मज़दूरी के बिकाऊ माल से अपनी दुकानें चमकाने में लगे लोगों से इसकी उम्मीद शक्तियों को क्या कहा जाये जो बंधुआ मुक्ति को सामन्तवाद विरोधी संघर्ष के रूप में देख रहे हैं और मुक्त बाज़ार व्यवस्था के सर्वव्यापी राज में भी भूमिहीनों को जमीनों के छोटे-छोटे टुकड़े बांटने को ही अपने भूमि कार्यक्रम सर्वोपरि कार्यभार बनाये हुए हैं।

यहां यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि हम बंधुआ मज़दूरी को बनाये रखने का समर्थन नहीं कर रहे हैं। देश में आज भी कई जगहों पर खेतों- भट्ठों-पत्थर-खदानों में हजारों बंधुआ मज़दूर अमानवीय हालात में काम कर रहे हैं। उन्हें इस दासता और बर्बर आर्थिक शोषण व अपमान से मुक्त कराना ही होगा। लेकिन यह काम अलग-थलग नहीं बल्कि मेहनतकशों की मुक्ति की व्यापक लड़ाई के एक अंग के रूप में ही हो सकता है।

जिस नंगी सच्चाई को एक व्यावसायिक पत्रिका का पत्रकार देख ले रहा है उसे अपने कठमुल्ला सूत्रों का दृष्टिरोधी चश्मा चढ़ाये हमारे ये क्रान्तिकारी बंधु नहीं पकड़ पा रहे हैं। खुली बाजार व्यवस्था में आज छोटे और मझोले किसान भी पूंजी की मार से उजड़कर भारी संख्या में ग्रामीण और औद्योगिक मज़दूरों की कतारों में शामिल हो रहे हैं। आज अगर बंधुआ या भूमिहीन मज़दूरों को जमीन के छोटे टुकड़े मिल भी जायें तो वे कितने दिनों तक उन्हें अपने पास रख पायेंगे। खाद-बीज-पानी-जोताई-बोवाई आदि के बढ़ते दामों के बावजूद अगर वह परिवार सहित जी-तोड़ मेहनत के दम पर खाने भर अनाज पैदा भी कर ले तो भी दूसरी आवश्यकताओं के लिए उसे बाजार में जाना ही पड़ेगा। और एक खराब फसल या प्राकृतिक आपदा उसे कर्ज के जाल में ऐसे धकेलेगी जिससे वह जमीन बेचकर ही निकल सकेगा। यह कहानी आज देश भर के गांव में दोहराई जा रही है और इसे न देख पाने वाले लोग ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजी और श्रम के बढ़ते ध्रुवीकरण को धीमा करने की कोशिशों के सिवा और कुछ नहीं कर रहे।

आज हमें श्रम की गुलामी के सभी रूपों के खिलाफ लड़ना है। और यह लड़ाई निजी सम्पत्ति की समूची व्यवस्था को मटियामेट करने की ही लड़ाई हो सकती है। गुलामी के एक नर्क से निकालकर दूसरी गुलामी के नर्क में छोड़ देने या श्रम की कतारों से कुछ को निकालकर थोड़े समय के लिए निजी मालिकाने के खेमे में डाल देने से किसका हित सध रहा है, इस पर सोचने की जरूरत है।

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP.349.2000

मिट्टी के तेल की आसमान छूती कीमतें
ग़रीबों का चूल्हा जलना भी मुहाल

लुधियाना। लुधियाना में मनमाने दाम पर बिक रहे मिट्टी के तेल ने मज़दूरों की रोजी-रोटी के संकट को और बढ़ा दिया है। किसी तरह दो जून की रोटी के जुगाड़ में लगे मज़दूर आज 20 रुपये प्रति लीटर तक मिट्टी का तेल खरीदने को मजबूर हैं। जबकि यही तेल पहले तेल के डिपों में राशन कार्ड पर 10 रुपये लीटर तथा 'ब्लैक' में 14 रुपये प्रति लीटर मिल रहा था।

लुधियाना में कई लाख औद्योगिक मज़दूर हैं, जिनमें से एक भारी आबादी वह है जो पंजाब के बाहर के राज्यों से रोटी-रोजगार की तलाश में भटकते हुए यहां पहुंची है। ऐसे मज़दूरों के 'प्रवासी' होने का बहाना बनाकर यहां का प्रशासन राशन कार्ड बनाने से इंकार कर देता है। नतीजतन ये मज़दूर कालाबाजारियों और कफनखसोट व्यापारियों के चंगुल में फंसने के लिए मजबूर होते हैं। मिट्टी के तेल की कीमतों में अचानक हुई बढ़ोत्तरी की मार आर्थिक बदहाली की चक्की में पहले से ही पिस रहे ऐसे लाखों औद्योगिक मज़दूरों और अन्य मेहनतकश लोगों को चुकानी पड़ रही है।

जिन मज़दूरों के राशन कार्ड बने भी हुए हैं उन्हें डंडीमार, बहानेबाज डिपो मालिक की चालबाजियों के कारण समय पर तेल-राशन उपलब्ध नहीं होता,

चार लीटर तेल के लिए वह मज़दूरों से इतने चक्कर कटवाते हैं कि मज़दूर परेशान होकर 'ब्लैक' से ही तेल खरीद लेता है, क्योंकि हर चक्कर में उसकी एक दिहाड़ी का नुकसान होता है। लुधियाना में ज़्यादातर मज़दूर खाना बनाने के ईंधन के तौर पर मिट्टी के तेल का ही इस्तेमाल करते हैं। गैस-चूल्हा खरीदना उनकी क्षमता से बाहर होता है और लकड़ी का चूल्हा जलाकर खाना पकाना संभव नहीं है, क्योंकि मुर्गी के दड़बे जैसे एक छोटे से कमरे में पांच-पांच मज़दूर रहते हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मिट्टी के तेल की नकली कमी पैदा कर कीमतें बढ़ा देना, चुनावबाज सियासतदानों और प्रशासनिक अधिकारियों की मिलीभगत से किया जा रहा बड़ा घोटाला हो। शायद यही कारण है शहर की ग़रीब आबादी के चूल्हे पर सीधी मार पड़ रही है और यहां का सरकारी अमला खामोशी साधे हुए है।

मिट्टी के तेल के इस मुद्दे को लेकर 'मोल्डर एंड स्टील वर्कर्स यूनियन, लुधियाना' एवं शहर के अन्य मज़दूर संगठनों ने आवाज उठाई है। इसके लिए गली-मोहल्लों में मीटिंगें की गई और 27 सितम्बर को डी.एफ.सी. आफिस के सामने एक धरने का आयोजन किया गया, जिसके बाद अधिकारियों ने यह आश्वासन दिया कि मज़दूरों के राशन कार्ड बनाये जायेंगे और कालाबाज़ारी रोकी जायेगी। देखना है इस आश्वासन पर कितना अमल होता है।

विक्रम सिंह,

जर्मन कवि बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते हैं हमको..
'संतोष करो, संतोष करो।'

उनके धंधों की खातिर
हम पेट काट कर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें..
'त्याग करो, भई त्याग करो।'

'मोटी-मोटी तोंदों को जो
दूंस-दूंस कर भरे हुए,
हम भूखों को सीख सिखाते..
'सपने देखो, धीर धरो।'

बेड़ा ग़र्क देश का करके
हमको शिक्षा देते हैं..
"तेरे बस की बात नहीं
हम राज करे तुम राम भजो"

विकास मुनाफाखोरों का, विनाश मेहनती जनता का - 4

साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का एक-एक दिन भारी है

मुकुल

देश में जारी आर्थिक "सुधार" कार्यक्रम पहले से ही बदहाल आम मेहनतकश आबादी के लिए बेहद कष्टप्रद साबित हो रहे हैं। उनके सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो गया है। "उदार" आर्थिक योजनाओं ने एक ओर तो पूंजीपतियों के वैभव और समृद्धि को बढ़ाया है, वहीं दूसरी तरफ मेहनतकशों की ज़िन्दगी ज़्यादा नारकीय होती गयी है। पूंजी की मार से अपनी जगह-जमीन से उजड़कर उजरती मज़दूरों की कतारों में शामिल होने वाले मध्यम और ग़रीब किसानों की संख्या में विगत दस वर्षों में करोड़ों की बढ़ोत्तरी हो चुकी है।

देश में आज 20 करोड़ मज़दूर असंगठित हैं। पुराने श्रम कानूनों को किश्तों में निष्प्रभावी बनाते हुए सरकार देशी-विदेशी पूंजीपतियों के आधुनिक उद्योगों को भी यह छूट दे रही है कि वे ज़्यादा से ज़्यादा काम दिहाड़ी और ठेका मज़दूरों से लें और उन्हें चन्द टुकड़ों के लिए बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टे काम करने के लिए मजबूर करें। खेत-मज़दूरों की स्थिति तो इनसे भी बदतर है।

इस दौर में धनी-ग़रीब के बीच की खाई और ज़्यादा चौड़ी होती गयी है। उदारीकरण की नीतियों के प्रभाव का अंनुमान सिर्फ इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1999-2000 में आबादी के माल 0.5 फीसदी हिस्से ने शेयर बाज़ार में 40 खरब रुपये की कमाई की जो उस पूरे कृषि क्षेत्र की आय के बराबर है जिसमें 67 फीसदी आबादी की जीविका चलती है। देश के ऊपर की तीन प्रतिशत आबादी और नीचे की 40 फीसदी आबादी की आमदनी के बीच का अन्तर 60:1 है।

उदारीकरण के पिछले दस वर्षों ने नेहरू के "समाजवाद" के मुखौटे को नोंचकर पूंजीवादी जनतंत्र के खूनी चेहरे को एकदम नंगा कर दिया है। इन दस वर्षों में देश के पूंजीवादी घरानों की पूंजी में बेइंतहा वृद्धि होती गयी है, वहीं ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वालों की और बेरोजगारों की संख्या में लगातार बढ़ोत्तरी की रफ्तार और अधिक तेज हो गयी है। सिर्फ ग्रामीण क्षेत्र में ग़रीबी रेखा के नीचे जीने वालों का हिस्सा 1991 से 1997 के बीच 35.04 फीसदी से बढ़कर 38.6 फीसदी हो चुका था और इसमें बढ़ोत्तरी लगातार जारी है।

हां, अगर "विकास" की बात देखी जाए तो 15-20 फीसदी ऊपर के परजीवी जमात का विकास ज़रूर हुआ है। पूंजीवादी लुटेरों से लेकर सटोरियों, कालाबाज़ारियों, नेताओं, अफ़सरों की खुशहाली ज़रूर बढ़ी है। हर्षद मेहता से लेकर केतन पारिख तक, बोफोर्स घोटाले से लेकर हवाला और तहलका डाट काम तक अनगिनत घटनाओं की बाढ़ सी आई है।

देश की इससे ज़्यादा बदतर स्थिति और क्या हो सकती है कि खाद्य खोदामों में 600 लाख टन से ज़्यादा अनाज पड़ा हुआ है, रखने की जगह न होने से एफ.सी.आई. के गोदामों से बाहर तक अनाज पड़े हैं, सड़कर समुद्र के हवाले हो जा रहे हैं। और दूसरी तरफ देश के कई हिस्सों में पूरे के पूरे इलाके में लोग भुखमरी व कुपोषण के शिकार हैं। भूख और बेकारी के कारण पूरे परिवार सहित आत्महत्या की खबरें लगातार बढ़ती जा रही हैं। इस दौर में, विकास का माडल बने आंध्र प्रदेश में तो फसलों की तबाही से किसान आत्महत्यों की खबरें लगातार आती रही हैं। "विकास" के इस दौर में इससे त्रासदपूर्ण स्थिति और क्या हो सकती है कि कर्ज के जाल में फंसे किसानों को अपना गुर्दा तक बेंचकर कर्ज मुक्त होना पड़ रहा हो।

दरअसल, देश में इस भयावह दौर की पूर्वपीठिका दो दशक पूर्व ही उस वक्त बननी शुरू हो गयी थी जब 1980-81 में इन्दिरा गांधी की कांग्रेसी सरकार पुनः क़ायम हुई थी। यह वह दौर था जब नेहरू के तथाकथित समाजवादी माडल का युग समाप्त होने लगा था। आम जनता के खून-पसीने से सड़क, यातायात, परिवहन, रेलें, संचार, लोहा-इस्पात जैसे भारी उद्योग खड़े हो चुके थे। देशी पूंजीपतियों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के वैशाखी की अब ज़रूरत समाप्त हो चुकी थी और

उदारीकरण के दस वर्ष

उनके लिए ये कमाऊ पूत बन चुके थे। यही वह समय था जब मुनाफे की रफ्तार तेज करने के लिए देशी पूंजीपतियों को नयी तकनीक और अतिरिक्त पूंजी की भी ज़रूरत थी। उधर मंदी के दुश्चक्र में फंसी विश्व साम्राज्यवादी शक्तियों को भी नये बाज़ार की तलाश थी।

फिर क्या था, पूंजी की शक्ति के हिसाब से हैसियत तय हुई। साम्राज्यवादी शक्तियां (बड़े भाई/ सीनियर पार्टनर) और देशी पूंजीपति (छोटे भाई/ जूनियर पार्टनर) ने मिलकर "विकास" की नयी तस्वीर पेश की। पूंजीपतियों की "मैनेजिंग कमेटी" देश की सरकारों ने इसे खूबसूरत नारों में सजाना-संवारना और अमली जामा पहनाना शुरू किया।

हुआ यह कि 1981 में विकास के नये माडल को खड़ा करने के लिए आई.एम.एफ./ विश्व बैंक से कर्ज की पहली खेप मिली। इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के 58 उद्योगों (लगभग 350 कारखानों) को बीमार उद्योग के रूप में चिन्हित किया गया और उन्हें 'औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन समिति' (बी.आई.एफ.आर.) के हवाले कर दिया गया। इसी क्रम में 1984 में राजीव गांधी के शासन काल में देशी बाज़ार के दरवाजे वैश्विक शक्तियों (बहुराष्ट्रीय कम्पनियों) के लिए थोड़ा सा खोला गया। 'कोलैबरेशन' की नयी शुरुआत हुई और देखते-देखते भारतीय बाज़ार सुजुकी, यामहा, होण्डा, कावासाकी, सोनी, वीडियोकान आदि से पट गया।

उधर महामंदी (ग्रेट क्रैश) के दुश्चक्र में फंसे विश्व साम्राज्यवाद ने इससे उबरने के लिए गैट के उरुग्वे दौर की शुरुआत की और डंकेल प्रस्ताव का नुस्खा (बचाव का अन्तिम ब्रह्मास्त्र) प्रस्तुत किया। यह साम्राज्यवादी लूट के नये दौर - भूमण्डलीकरण के दौर की शुरुआत थी। उदारीकरण-निजीकरण-छंटनी-तालाबंदी-विनिवेशीकरण के नये दौर की शुरुआत थी। 1991 से लेकर आज तक सभी सरकारों के प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री और भाड़े के अर्थशास्त्री यह कहते रहे हैं कि उदारीकरण-निजीकरण ही एकमात्र विकल्प है। वे एक मायने में सही ही कहते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था के सामने आज यही एकमात्र विकल्प है और इसके जो विनाशकारी नतीजे सामने हैं, वे स्पष्ट कर देते हैं कि भविष्य क्या होगा! पूंजीवादी हुकूमत को जो करना था, उसने वह किया है। अब इस देश की मेहनतकश जनता को वह करना होगा, जो उसे करना चाहिए।

आज देश का इतिहास ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जब समय के गर्भ में महत्वपूर्ण बदलाव के बीज पल रहे हैं। मुनाफाखोरों के विकास और मेहनती जनता के विनाश का यह अन्तिम दौर है। आज हर जगह सुगबुगाहट है और मेहनतकश जनता के बीच परिवर्तन की तड़प है। परिवर्तनकामी शक्तियां संघर्षरत हैं लेकिन बिखरी हुई हैं। देश का मज़दूर तबका ट्रेड यूनियन नेतृत्व की गद्दारियों से भी सबक ले रहा है और पूंजीवादी संसदीय जनतंत्र की खर्चीली धोखाधड़ियों से भी ऊब चुका है, लेकिन एक सही क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव में वह किंकर्तव्यविमूढ़ है। उसके लिए साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का एक-एक दिन भारी पड़ रहा है।

उदारीकरण के दस वर्षों का सबक यही है कि वह पूरी जनता जो इस व्यवस्था में छली जा रही है, ठगी जा रही है, लूटी जा रही है और आवाज़ उठाने पर कुचली जा रही है, एक नई व्यवस्था के निर्माण की दिशा में आगे आये। उसे आगे आना ही होगा। एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए जो हर हाथ को काम दे, हर भूखे को रोटी। एक ऐसा समाज जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे तंत्र पर उत्पादन करने वाले सामाजिक वर्गों का नियंत्रण हो। फैसले लेने की पूरी ताकत उसी के हाथों में हो। इसके लिए एक ही रास्ता है - विश्व पूंजीवादी तंत्र से नाभिनालबद्ध देशी पूंजीवादी व्यवस्था को चकनाचूर करके पूरे समाज के आर्थिक आधार और ऊपरी ढांचे का न्याय और समानता के आधार पर पुनर्गठन हो। यानी क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य की - आम जनता के अपने राज्य की स्थापना हो।

(समाप्त)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, भऊ।